

॥ श्रीः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

श्रीमहान्तयुगलदासनिर्मित—

योगमार्गप्रकाशिका

अर्थात्

योगरहस्यग्रन्थ ।

भाषाटीकासमेत ।

गिरधरशास्त्रिसंशोधित.

जिसको
खेमराज श्रीकृष्णदासने
बंबई
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें
मुद्रितकर प्रसिद्धकिया ।

माघ संवत् १९६१, शाके १८२६.

भूमिका।



इस संसारविषे मोक्षके हेतु अनेक उपाय हैं परंच समस्त साधनाका मूल योगाभ्यासहै क्योंकि विना चित्तकी एकाग्रता हुये कोई साधन ठीक नहीं सो चित्तकी एकाग्रता विना योगाभ्यासके नहीं होवेहै सो वार्त्ता गीताजीमें कहीहै "चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्" अर्थ—हे श्रीकृष्ण हीति निश्चय करके मन अत्यंत चंचल वा बलवान है तिस कारण मनके निरोध करनेमें केवल एक योगही श्रेष्ठतर उपाय है अन्य नहीं सो वार्ता योगसूत्रमें कथन करी है "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होना यही मुख्य योगका लक्षण तथा श्रीकृष्ण भगवान्ने गीतामें अर्जुनके प्रति कहा है "तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ॥ कर्मिभ्यश्चाधिको योगीतस्माद्योगी भवार्जुन" अर्थ—हे अर्जुन तपस्वीते वा ज्ञानीते वा कर्म्मीते योगाभ्यासी सबसे ही श्रेष्ठ है ताते तू योग कर, योगके सदृश अन्य नहीं। इति इससे योग सदैव सेवन करने योग्य है ब्रह्मा विष्णु महेशादिक जो बड़े बड़े महापुरुष हैं वा अन्य ऋषि लोग सो सब केवल योगके द्वारा सिद्धिकूं प्राप्त हुये हैं सो वार्ता वेद शास्त्र वा पुराणोंमें प्रसिद्ध है हम कहांतक वर्णन करें। अब आजकल प्रायः मनुष्य केवल नाकपर हाथ छूदेनेकोही योग वा प्राणायाम समझते हैं इससे जप तप आसन प्राणायाम सिद्धि कहांसे प्राप्ति हो और ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व होना तो बहुतही मुशकिल है इसी हेतु नास्तिक लोग असिद्ध तथा पोप ऐसे निंद्य वचन कहते हैं यदि जाने तो प्रत्यक्ष सिद्धि द्वारा उनके मुखकूं तोड आप अपनेकूं कृतार्थ समझे और योगके ग्रंथ तो बहुत हैं परंच उन सबोंका सार सार श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीसवाई महेंद्रप्रतापसिंह बहादुर टीकम गढ़की आज्ञानुसार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ नृहसिंहदासजी वा श्रीमन्महंत वेदांतवर्य्य श्री १०८ स्वामी अयोध्यादासजीकी शिक्षानुसार योगक्रिया सीखकर यह योग ग्रंथ श्रीमत्परमहंस श्रीमहान् जुगलदासजीने बनाकर प्रकाशित किया भाषानुवाद सहित जो इसमें भूल वा अशुद्धि हो सो सब सज्जन जनोंकूं निवेदन है कि कृपाकर सुधार देवें। आपका—कृपापात्र श्रीमत्परमहंस श्रीयुत जुगलदास स्थान टीकमगढ़जुगलनिवास बाग मंदिर.



॥ श्रीः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

योगमार्गप्रकाशिका

अर्थात्

योगरहस्य ग्रन्थ ।

भाषाटीकासमेत ।

ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

सच्चिदानंदरूपाय रामायाक्लिष्टकर्मणे ॥
संसारध्वांतनाशाय राघवाय नमोनमः[१] ॥१॥

ॐ तत् कहें तीन सत् कहें सो जो अविनाशी ब्रह्म है ताके अर्थ नमस्कार करेहैं सच्चिदेति । सत् चित् आनंद सत् कहें जो तीनकालविषे एकरस वर्त्तमान है चित्त कहें जो साक्षात् ज्ञानस्वरूप आनंद जो सुखस्वरूप एवंभूत जो अक्लिष्टकर्म श्रीरामचंद्र तिनके अर्थ नमस्कार है फेरि कैसे हैं संसारको जो मायामोहरूपी अंधकार ताके नाशकर्ता है ॥ १ ॥

रामानुजाय शांताय गुरुवे परमात्मने ॥ यो-
गेश्वराय शेषाय भूयोभूयो नमाम्यहम् ॥ २ ॥

१ नमोनम. इति पाठः साधुः ।

रामानुज जो साक्षात् शेषभगवान् शांतस्वरूप परमात्मा योगेश्वर अर्थात् योग जो ब्रह्मविद्या ताके परंपराके आचार्य्य तिनके अर्थ वारंवार नमस्कार करौं हौं ॥ २ ॥

प्रणम्य स्वामिनं देवं शरण्यं दीनवत्सलम् ॥ मुमुक्षूणां हितार्थाय योगमार्गोऽभिधीयते ॥ ३ ॥

फेरि अपने जो गुरु स्वामी शरण्य दीन वत्सल अर्थात् दीनजनोंके हितकारक तिनहिं प्रणामकरिकै मुमुक्षु जो मोक्षकी इच्छा करनहारे जन तिनके हितके अर्थ योगको जो मार्ग अर्थात् आसनप्राणायामादि जो राजजोग सो वर्णन करौंहौं ॥ ३ ॥

संसारार्णवमग्नानां ज्ञानं नौका हि विद्यते ॥ योगिनां सुलभं तत्र दुर्लभं विषयैषिणाम् ॥ ४ ॥

संसाररूपी समुद्रके विषे मग्न अर्थात् डूबनेवारे जो मनुष्य तिनको एक ज्ञानही नौकारूप उपाय है सो ज्ञान योगीजनोंकरिकै योगद्वारा शीघ्रही प्राप्त होवैहै विषयैषी अर्थात् विषयी जीव करिके दुर्लभ है सो वार्ता ब्रह्मानं-

दजीने योगकल्पद्रुमग्रंथमें कथन करीहै ॥ यथा—ज्ञानं वदंतीह विमोक्षकारणं तज्जायते नैव विलोलचेतसा ॥ लौल्यं न योगेन विना प्रणश्यति तस्मात्तदर्थं हि यतेत साधकः ॥ १ ॥अर्थ—यद्यपि ब्रह्मज्ञानही मोक्षकी प्राप्तिका कारण है तथापि चित्तकी एकाग्रता हुयेविना सो ज्ञान नहीं संभवैहै सो चित्तकी एकाग्रता विनायोगाभ्यासके नहीं होवैहै तासें सदैव योग साधकपुरुषको करना उचितहै ॥ ४ ॥

ज्ञानादृते न मुक्तिस्स्याद्यद्योगेन विना नहि ॥
स च योगः पुरा प्रोक्तो ह्यभ्यासादेव सि-
द्ध्यति ॥ ५ ॥

ज्ञानतें रहित मोक्ष नहीं अर्थात् नित्य नैमित्तिक जो कर्म सो केवल ज्ञानहीके अवांतर हैं सो वार्ता श्रीमत् शंकराचार्य्यने वेदांतसारविषे कथन करी है ॥ यथा—नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेनांतःकरणशुद्धिः ॥ नित्य नैमित्तिकप्रायश्चित्त उपासना इनके अनुष्ठान करनेतें मन बुद्धि चित्त अहंकाररूपी जो अंतःकरण सो शुद्धिकूं प्राप्त होवैहै ॥ मोक्ष केवल ज्ञानही द्वारा प्राप्त है सो ज्ञान विनायोगाभ्यास नहीं संभवै काहेतें कि, चित्तकी वृत्तियां बहुत चंचल हैं तातें बुद्धिकी एकाग्रता नहीं होवैहै यद्यपि

जपतपादिशुभकर्मकरिकै बुद्धिकी एकाग्रता होवैहै तथापि जिसप्रकार योगाभ्याससे बुद्धि शुद्धिताकूं प्राप्त होवैहै तैसी अन्य उपायोंकरिकै नहीं काहेतें कि जप, तप, उपवास, उपासनादिक कर्म्मोंसे योगाभ्यासका अधिक फल है सो वार्ता अथर्वणवेद उपनिषद्में कहीहै यथा–क्षणमेकमास्थाय क्रतुशतस्य फलमवाप्नोति ॥ अर्थ--एकक्षणमात्र भी समाधिमें स्थित योगीकूं सौ यज्ञको फल प्राप्त होवैहै तथा अत्रिसंहितामें कथनकियाहै ॥ यथा–योगात्संप्राप्यते ज्ञानं योगो धर्मस्य लक्षणम् ॥ योगः परं तपो ज्ञेयः तस्माद्युक्तस्समभ्यसेत् ॥ १ ॥ न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्यया ॥ गतिं गंतुं द्विजाः शक्ताः योगात्संप्राप्नुवंति याम् ॥ २ ॥ अर्थ–योगतें ज्ञानकी प्राप्ति होवै है योगही धर्मप्राप्तिका लक्षण है तथा योगही श्रेष्ठ तप है तातें सर्वदाही योगसाधन करना चाहिये । तथा योगाभ्यासकरिकै जो गति प्राप्त होवैहै सो तीव्र तप जप वा वेदपाठ वा यज्ञादि शुभकर्मके करनेतें नहीं सो वार्ता याज्ञवल्क्यसंहिताविषै कथन करीहै ॥ यथा–इज्याचारदमाहिंसातपःस्वाध्यायकर्म्मणाम् ॥ अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥ १ ॥ अर्थ–पूजा आचार इंद्रियोंका दमन तप वा वेदाध्ययनादि सर्व-

कर्मोंसे जो योगाभ्यास करिकै आत्माका साक्षात्कारकरना सो परम धर्म है ॥ तथा दक्षस्मृतौ—सुसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म स्त्री कुमारीसुखं यथा ॥ अयोगी नैव जानाति जात्यंधो हि यथा घटम् ॥ १ ॥ अर्थ—जैसे यौवनअवस्थाकी स्त्री पतिसंभोगजन्य सुखकूं आपहीं अनुभव करैहै तैसे ब्रह्मानंदसुखकूं स्वयं योगीही अनुभव करतेहैं अन्य नहीं जैसे जन्मांधपुरुषकूं घटके स्वरूपका बोध नहीं तैसेही अयोगी उस ब्रह्मको नहीं जानतेहैं तथा सांख्यसूत्रमें कपिलाचार्य्यनेभी कहाहै ॥ यथा—नोपदेशश्रवणेपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत् ॥ अर्थ—विना योगाभ्यास केवल वेदांतश्रवणमात्रसेही कृतकृत्यता नहीं जैसे दैत्योंके पति विरोचनकूं ब्रह्मासे उपदेशश्रवण होनेपरभी ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होतीभई तथा श्रुतिमेंभी कहाहै ॥ यथा—अथ तद्दर्शनमुपायो योगः ॥ अर्थ—तिस आत्माके साक्षात्करणेमें एक योगही उपाय है ॥ तथा कूर्म्मपुराणमें महादेवजीने कहाहै ॥ यथा—योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपंजरम् ॥ प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानाग्निर्वाणमृच्छति ॥ १ ॥ अर्थ—प्रथम योगरूपाग्निकरिकै समस्तपापोंका नाश करिकै अंतःकरणशुद्धिद्वारा स्वच्छ ज्ञान प्राप्तहोवैहै ज्ञान प्राप्त भये कैवल्यपद अर्थात् मोक्षपद प्राप्त

होवैहै ॥ तथा—शिवसंहितामें शिवजीनेभी कहाहै ॥ यथा—आलोक्य सर्वशास्त्राणि सुविचार्य पुनः पुनः ॥ इदमेवं समुत्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम्॥ १ ॥ अर्थ—श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि, हे प्रिये मैंने सर्वशास्त्रको देखि वा विचार करि वारंवार यह निश्चित किया कि एक योग शास्त्र परममतहै इसके समान कोई अन्य मत नहीं ॥ तथा गोरक्षसंहितामें कहाहै ॥ यथा—एतद्विमुक्तिसोपानमेतत्कालस्य वंचनम् ॥ यद्व्यावृत्तं मनो भोगादासक्तं परमात्मनि ॥ १ ॥ अर्थ—जब योगाभ्याससे मन विषयोंसे हटिजाता तब ईश्वरमें प्राप्त होवैहै तब मृत्यु जराकोभी जीतकरि कालके मुखकी वंचना करैहै तिससे अवश्य मुक्तिका सोपान यही कर्म्म है इसकारण योग सर्वत्र सर्व वेद वा महात्माओंका मत है किसीने खंडन नहीं किया तिससे योग परम सेवनीय है सो योग पूर्वकालसे प्रसिद्ध है केवल अभ्यासमात्रसेही सिद्ध होवैहै ॥ ५ ॥

शक्रादिस्वर्गलोकेषु पुत्रदारागृहादिषु ॥ विरक्तस्यैव योगस्य सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ६ ॥

इंद्रपदको आदिलेकरि सुरलोक कहें जो देवलोक है तथा पुत्र दारा गृहादिविषे जो पुरुष विरक्त है तिस पुरुषकोही सम्यक् प्रकारसे योगकी सिद्धि होवैहै अन्यकूं नहीं सो

वार्त्ता योगसूत्रमें कथनकरी है ॥ यथा—विरक्तस्यैव तत्सिद्धिः ॥ अर्थ—विरक्तपुरुषहीको तिस परमात्माकी प्राप्ति होवैहै ॥ ६ ॥

प्रशांतचित्तस्य जितेंद्रियस्य गुणान्वितस्या- गुरुसेविनश्च ॥ नूनं भवेद्योगसमस्तसिद्धि- र्नान्येतरासक्तजनस्य कस्मै ॥ ७ ॥

प्रशांतचित्त जितेंद्री विद्वान् सब प्रकारसे गुरुसेवी नूनं कहें निश्चय करिकै तिस पुरुषहीको योगकी संपूर्ण सिद्धि प्राप्त होवैहै इतर जो विषयादिकोंमें आसक्त तिनको नहीं ७

एकांते विजने देशे शोभिते बहुपादपैः ॥ कुर्य्याद्योगमठं धीमान् सर्वतो भयवर्ज्जि- तम् ॥ ८ ॥

एकांत जो विजन देश अर्थात् बहुतसे मनुष्योंकरिकै रहित देश और वृक्षादिकनकरिकै शोभायमान ताविषे योगमठ अर्थात् कुटी वा गुफा बनावै और वनमें नहीं बनावै काहेतें कि, अन्नादिकोंकेवास्ते आनेजानेपडेगा आश्रम ग्रामके नजदीक होना चाहिये सो वार्त्ता मनुस्मृतिमें कथन करीहै यथा—ग्राममन्नार्थमाश्रमेत् ॥ अर्थ—

---

१ आसमंतात् गुरुसेवितस्य । २ एकाकीतिपाठः–साधुः ।

अन्ननिमित्त ग्रामके नजीक आश्रम करै जामें कोई सिंह व्याघ्र सर्प वायु इत्यादिकोंका भय न होवै ऐसा सुंदर स्वच्छ आश्रम बनावै ॥ ८ ॥

स्वधर्मनिरतः शांतः सर्वशौचसमन्वितः ॥
विध्युक्तकर्म्मसंयुक्तो भोगसंकल्पवर्ज्जितः॥९॥

अपने आश्रमके धर्मविषे निरत शांत अर्थात् नहींहै चलायमान बुद्धि कहे प्रेमी हो जाकी संपूर्ण शौचकरिकै युक्त विधिपूर्वक कर्मसंयुक्त भोगादिकोंकी इच्छाकरिकै रहित ॥ ९ ॥

यमैश्च नियमैर्युक्तः सत्यधर्मपरायणः ॥
सुशोभने मठे योगी योगाभ्यासं समाचरेत् ॥ १० ॥

यमनियमसंयुक्त सत्यधर्म जो आत्मनिरूपण अर्थात् वेदांतश्रवणादि ताविषे परायण सो सुंदर मठके विषे योगी जो है सो योगाभ्यास करै ॥ १० ॥

॥ अथ योगभेदनिरूपणम् ॥

मंत्रयोगो लयश्चापि हठयोगस्तथैव च ॥
राजयोगोपि वै तत्र चतुर्द्धा संप्रकीर्तितः ॥ ११ ॥

अब आगे चारिप्रकारके भेद वर्णन करैहैं प्रथम मंत्रयोग १ तथा लययोग २ हठयोग ३ तथा राजयोग ४ इन भेदनसे चारिप्रकारका योग पुर्वाचार्य्योंने कथन कियाहै सो वार्त्ता खेचरीपटल विषै कथनकरीहै ॥यथा–मंत्रो हठो लयो राजयोगोयं भूमिकाक्रमात् ॥ १ ॥ ॥ अर्थ–मंत्रयोग हठयोग लययोग राजयोग इसतरह चारिप्रकारकी योगभूमिका है तहां प्रथम मंत्रयोग वर्णन करौंहौं ॥ ११ ॥

॥ मंत्रयोगनिरूपणम् ॥

श्वासनिष्कासकाले हि हकारं परिकीर्त्यते ॥
पुनः प्रवेशकाले च सकारः प्रोच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

जब श्वास बाहर निष्कासकूं प्राप्त हो अर्थात् बाहर निकलै तब हकार शब्द उच्चारण करै और जब फेरि भीतरको जावै तब सकार उच्चारण करै सोई वार्त्ता अनन्यजीने कथन करीहै ॥ यथा – जब श्वासा बाहर लैआवै । तब हकारशब्द उपजावै ॥ जब श्वासा भीतर संचरै तब सकार शब्दहि उच्चरै ॥ १२ ॥

प्रातरुत्थाय मेधावी संकल्पविधिपूर्वकम् ॥
गुरूपदेशतो योगी मंत्रयोगं समाचरेत् ॥१३॥

बुद्धिमान् प्रातःकाल उठिकरिकै गुरुके उपदेशतैं विधिपूर्वक संकल्प कारिके मंत्रयोग जो है ताको सम्यक् प्रकार आचरण करै ॥ १३ ॥

एवं क्रमेण कर्तव्यमहोरात्रमविस्मरेत् ॥ सोहमात्मेति विज्ञाय न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ १४ ॥

एवं कहे यहीप्रकार रात्रिंदिवसविषे जप करै अर्थात स्मरण करतारहे अभ्यास नहीं छोडै सो वार्ता खेचरीपटलविषे कथन करीहै ॥ यथा – " वैठत चालत डोलत बोलत, श्वासा शब्द हृदयमैं खोलत" इसप्रकार सदैव अभ्यास करना योग्यहै दोहा–जो पूरो सतगुरुमिले, ज्ञान युक्ति सब देय ॥ भवसागरके जीवको, पार लगावै सोय ॥ हंस हंस इस मंत्रका सर्वदाही जप करैहैं परंतु जानते नहीं सो गुरुमुखद्वारा जानना सुषुम्नानाडीविषे हंसहंसके उलटानेसे सोहं सोहं जप होवैहै तिसका नाम मंत्रयोगहै जब सोहं नाम सो परमात्मा मैं हौं ऐसी जाने तब कोई चिंतवन नहीं रहैहै ॥ १४ ॥

गणेशं च विधिं विष्णुं शिवं जीवं तथैव च ॥ स्वामिनं सच्चिदानंदं क्रमाच्चक्रेषु चिंतयेत् ॥ १५ ॥

जपको विधान कहैहैं गणेशंचेति। गणेश ब्रह्मा विष्णु शिव जीव (गुरु) और सच्चिदानंदब्रह्म क्रमतें चक्रनविषे चिंतवन अर्थात् ध्यान करना चाहिये सो ध्यान वर्णन करैहैं आगे चक्रनको विधान कहैहैं ॥ १५ ॥

॥ अथ चक्राणि ॥

मूलाधारे गणेशोस्ति स्वाधिष्ठाने प्रजापतिः ॥
मणिपूरे तथा विष्णुरनाहते तथा शिवः॥१६॥

चक्र नाम तथा देवता अधिष्ठाता- कहैहैं प्रथम आधारचक्र है नाम जाको ताविषे गणेशदेव विराजमान हैं ॥ १ ॥ दूसरा स्वाधिष्ठान नाम चक्र ताविषे चतुर्मुखब्रह्मा विराजमान हैं तथैव तीसरे मणिपूरक नाम चक्रविषे साक्षात् विष्णु विराजमान हैं चौथे अनाहतचक्रविषे शिव विराजमान हैं ॥ १६ ॥

कंठकूपे वसेज्जीव आज्ञाचक्रे ततो गुरुः ॥
ततश्च सच्चिदानंदः शून्ये व्योम्नि हि तिष्ठति ॥ १७ ॥

पाँचवा विशुद्धनाम चक्र तथा कंठकूपभी नामधेय है, ताविषे जीव तिष्ठैहै छठवां आज्ञाचक्र ताविषे गुरु ततःकहैं ताके अनंतर सच्चिदानंद साक्षात् सबतें परे जो आकाश ताके विषे विराजमान हैं ॥ १७ ॥

॥ अथ ध्यानस्वरूपमाह ॥

मूले चतुर्दलोपेते वसांताक्षरसंश्रये ॥ च-
तुर्भुजमुदारांगं पूर्णचंद्रसमप्रभम् ॥ १८ ॥

अव ध्यानका स्वरूप वर्णन करें हैं कि, मूल जो आधारचक्र ताविषे चतुर्दलयुक्त कमल चारिअक्षर वकारसे लेकर सकारपर्य्यंत व् श् ष् स् इनकरिकै शोभायमान तहाँ चतुर्भुज चारिभुजनकरिकै उदार है अंग जाको पूर्ण जो चंद्र ताकेसोशोभायमान स्वरूप इसप्रकारका ध्यान करे ॥ १८ ॥

सोहमस्मीति विज्ञाय गणेशं शक्तिसंयुतम् ॥
द्वितीये षड्दलयुते षडक्षरसमन्विते ॥१९॥

शक्ति जो देवी ताकरिकै सहित जो गणेश सो मैं हूं इसप्रकार जप ध्यान प्रथमचक्रमें करने योग्य है द्वितीय कहें दूसरा चक्र अर्थात् कमल है सो षट् दल कहें छै दलों-करिकै तथा षट् अक्षर वकारसे लेकरि लकारतक वं भं मं यं रं लं इन अक्षरोंसे युक्त है ॥ १९ ॥

चतुर्मुखं चतुर्बाहुं सुप्रसन्नं शुचिस्मितम् ॥
कमंडलुधरं देवं धातारं शक्तिसंयुत-
म् ॥ २० ॥

---

१ ध्यायेदितिशेषः । २ ध्यायेदितिगतेनान्वयः ।

चतुर्मुख कहैं चारिमुख चारिबाहु सुप्रसन्न शुचिस्मित कमंडलुकूं धारनकरे देव धाताहैं शक्ति जो सावित्री देवी ताकरिके सहित शोभायमान हैं ॥ २० ॥

सोहमात्मेति विज्ञाय तद्ध्यानं हि जगत्प्र-
भुम् ॥ २१ ॥

सो आत्मा मैं हूँ अर्थात् सो ब्रह्मा मैं हूँ इसप्रकार अभेद चिंतवनकरना सोई ध्यानरूप है ॥ २१ ॥

मणिपूरे दशदले कंदमध्यात्समुत्थिते ॥
द्वादशांगुलनालेस्मिन्रक्ताभे केशराऽन्वि-
ते ॥ २२ ॥

मणिपूरकनाम जो चतुर्थ कमल है सो दश दलकरिके तथा दशअक्षरोंकरिके युक्त है डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं इनकरिकै युक्त कंदमध्यतैं समुत्थित अर्थात् उत्पन्नहै द्वादशांगुल है नाल जाकी रक्तआभा केशरान्वित है ताके विषे ॥ २२ ॥

वासुदेवं जगद्योनिं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥ चतु-
र्भुजमुदारांगं शंखचक्रगदाभृतम् ॥ २३ ॥

वासुदेवभगवान् जगद्योनि पद्मपत्रनिभेक्षण चतुर्भुज उदार अंग हैं शंखचक्रगदाको धारण करेंहैं ॥ २३ ॥

नीलोत्पलदलाभासं रमया परिसेवित-
म् ॥ प्रभाभिर्भासयद्रूपं भक्तानामभयं-
करम् ॥ २४ ॥

नीलोत्पल जो नीलकमलहै ताके दलकी नांई आभास कहैं शोभा है जिनकी, रमा जो लक्ष्मी हैं तिनकरिकै सेवित हैं प्रभा जो कांति ताकरिकै प्रकाशमान हैं स्वरूप जिनको भक्त जे हैं तिनको अभय अर्थात् मोक्षके देनेवाले हैं॥२४॥

मनसालोक्य देवेशं सर्वदेववरं हरिम् ॥
सोहमस्मीति तं मत्वा ध्यानयोगविदो
विदुः ॥ २५ ॥

एवंभूत जे देवेश विष्णु हैं सर्व जे देव तिनकेविषे वरिष्ठ हें तिनहीको मनकरिकै चिंतमनकरै सो विष्णु मैंहौं ऐसा मानि योगीजन ध्यान कहै ॥ २५ ॥

अतः परे ह्यनाहते पद्मे द्वादशपत्रके ॥ व्याघ्र-
चर्मांबरधरं शशीव प्रियदर्शनम् ॥ २६ ॥

अतः कहैं मणिपूरकतैं परे जो अनाहतचक्र पद्म है सो द्वादशपत्रकरिकै शोभायमान द्वादशअक्षरोंकरिकै युक्त है ताविषे व्याघ्रचर्माम्बर धारण करे शशी जो चंद्रमा है ताके न्याईं हैं प्रियदर्शन जाके ॥ २६ ॥

पद्मासनसमासीनं देवेशं गिरिजायुतम् ॥ जगत्संहारकर्तारमनंतबलपौरुषम् ॥ २७ ॥

पद्मासनकरिकै विराजमान देवेश गिरिजायुक्त जगत्संहार करनेवाले अनंत हैं बल पौरुष जिनको ॥ २७ ॥

अहमेवेति या बुद्धिः सा ध्यानेषु समंततः ॥ २८ ॥

एवंभूत जो शिव सो मैं हूं इसप्रकार जो बुद्धि सो ध्यानके विषे संमत है ॥ २८ ॥

विशुद्धे षोडशदले षोडशाक्षरसंयुते ॥ जगत्कारणकर्त्तारं जीवात्मानं सनातनम् ॥ २९ ॥ सोहमात्मेति या बुद्धिः सा ध्यानेषु समंततः ॥ ३० ॥

विशुद्धनाम जो चक्र अर्थात् पद्म षोडशपत्र तथा षोडशअक्षरोंकरिकै संयुक्त ताविषे जगत्कारणको कर्त्ता जीवात्मा सनातन ॥ २९ ॥ सो आत्मा मैं हूं या बुद्धि ध्यानके विषे संमत है ॥ ३० ॥

भ्रुवोर्मध्येऽतरात्मानं गुरुं परमभास्वरम् ॥ अहमेवेति तं मत्वा हंसमित्यक्षरद्वयम् ॥ ३१ ॥

आज्ञाचक्र भुवनके मध्यविषे अंतरात्मा कहैं व्याप्त है एवं भूत जो गुरु परमभास्वर प्रकाशमान सो मैं हूं ऐसा तं कहैं तौन गुरु हैं हंस ये दो अक्षर ताकेविषे हैं ॥ ३१ ॥

अतः परं निजं नित्यं विशुद्धं व्योमवदृढम् ॥ एकं ज्योतिर्मयं शांतमनंतमचलं विभुम् ॥ ३२ ॥

अतःपरं यातैं परे निज कहैं निजस्वरूप नित्य कहैं सर्वदा एकरस विशुद्ध आकाशकीनांई दृढ एक ज्योतिर्मय शांत अनंत कहैं नहीं है अंत जाको अचल विभु कहैं देदीप्यमान ॥ ३२ ॥

सर्वगं सर्वकर्त्तारममूर्तिमजमव्ययम् ॥ अहमेव परं ब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणम् ॥ ३३ ॥

सर्वग अर्थात् सर्वातर्य्यामी सर्वकर्त्ता अर्थात् उद्भव स्थिति संहारकर्त्ता, अमूर्त अर्थात् नहीं है तादृश मूर्ति अज कहैं जन्मरहित अव्यय नाशरहित एवंभूत जो परब्रह्म है सो एव कहैं निश्चयकरिकै सच्चिदानंदलक्षण मैं हूं ॥ ३३ ॥

षट्शतं च गणेशाय षट्सहस्रं च ब्रह्मणे॥ षट्सहस्रं च प्रभवे षट्सहस्रं शिवाय

च ॥ ३४ ॥ जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं स्वामिने तथा ॥ परमात्मने सहस्रं च जपं नित्यं समर्पयेत् ॥ ३५ ॥

षट्शत अर्थात् छै सौ ६०० गणेशजीके अर्थ तथा छै हजार ६००० ब्रह्माजीके अर्थ तथा छै हजार ६००० श्रीविष्णुभगवानके अर्थ तथा छै हजार ६००० शिवजीके अर्थ पुनः ॥ ३४ ॥ एकसहस्र १००० जीवात्माके अर्थ तथैव एक सहस्र १००० स्वामी जे श्रीगुरुजी तिनके अर्थ तथा एक हजार १००० परमात्मा जो ब्रह्म हैं तिनके अर्थ जप नित्यप्रीत समर्पण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमेव च ॥ साधकस्य भवेन्नित्यं जपसंख्या हि मोक्षदा ॥ ३६ ॥

इक्कीसहजार छै सौ २१६०० इस साधकपुरुषकी जपसंख्या नित्यही होवै है सो संख्या मोक्षके देनेवाली होवैहै ॥ ३६ ॥

यदा सोहं सुषुम्नायां भासते हि स्वभावतः ॥ सर्वकर्माणि संत्यक्त्वा जीवन्मुक्तो भवेत्तदा ॥ ३७ ॥

यदा कहैं जिसकालमें इस साधकपुरुषके स्वभावतेही सोहं शब्द सुषुम्ना ब्रह्मनाडीविषे उत्पन्न होवै है उसकाल-विषेही सर्व कर्मनको त्यागकरि जीवन्मुक्त होवै है अर्थात् देहाध्यासरहित होवैहै ॥ ३७ ॥

न क्षुधा न तृषा निद्रा शीतोष्णं न तथैव च ॥ न मृत्युर्नांतकः क्रुद्धो बाधते तं च योगिनम् ॥ ३८ ॥

न क्षुधा न पिपासा न निद्रा तथा न शीत उष्ण न मृत्यु न अंतक जो काल भगवान तिस योगीको कोई बाधक नहीं अर्थात् कोई बाधा नहीं करैहै ॥ ३८ ॥

येन दृष्टं परं ब्रह्म सोहं ब्रह्मेति मन्यते ॥ किं चिंतयति निश्चिंतो निर्विकारोऽतिनि-र्मलः ॥ ३९ ॥

जापुरुषकरिकै परं ब्रह्म अर्थात् परमात्मा दृष्ट है सो ब्रह्म मैं हूं या बुद्धिविषे स्थित है किंचितयति सो कुछभी चिंतमन नहीं करैहै अर्थात् निश्चित है निर्विकारी अत्यंत निर्मल है ॥ ३९ ॥

यदज्ञानाज्जगज्जातं सदा सत्येन भासते ॥ सोहं ब्रह्मेति विज्ञाय न कांक्षति न शोचति ॥४०॥

जिस अज्ञानकरिकै जगत उत्पन्न है सो जगत् सर्वदा सत्यकरिकै नाशमान है सो ब्रह्म मैं हूं एवंभूत ज्ञानी 'न कांक्षति न शोचति' न कोई वांच्छा न शोच करै॥ ४० ॥

तदा बद्धो यदा जीवो किंचिद्वाञ्छति शोचति ॥ तदा मोक्षो यदा चित्ते न शोचति न वाञ्छति ॥ ४१ ॥

तिसकालविषे ही जीव बद्ध है जिसकालमें कुछभी वांछा वा शोच है तदा कहैं तिसकालविषेही मोक्ष है यदा जिसकालमैं चित्तविषे शोच वा वांछा कुछ नहीं है ॥४१॥

मंत्रयोगो मया चोक्तः प्रोक्तश्च मुनिभिः पुरा॥ योगस्य च फलं किंतु ब्रह्मतुल्यं प्रकीर्तितम्॥ ४२ ॥

मंत्रयोग जो है सो हमकारिकै कहा जो कि पूर्वकालविषे मुनीननेभी कहाहै सो इस मंत्रयोगके फलकूं कहा वर्णन करूं यह साक्षात् ब्रह्मतुल्य है ॥ ४२ ॥

इति श्रीयोगमार्गप्रकाशिकायां मंत्रयोगवर्णनं नाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

॥ अथ लययोगः ॥

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्याद् वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधात् ॥ चित्तं स्थिरं यस्य विनावलंबात् स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ॥ १ ॥

अब लययोगके लक्षण कहेहैं विनाही नासिकाका अग्रभाग देखनेसे जाकी दृष्टि स्थिर है विनाही प्राणायामोंके वायु स्थिर है, विनाहीं अवलंवके अर्थात् षट्चक्रके ध्यान करे विनाही जिस पुरुषका चित्त स्थिर है सोई योगी वो गुरु वा सेवनीय है ॥ १ ॥

अथासनं दृढं बद्धा मुद्रां विधाय शांभवीम् ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नादं सुषुम्नायां परामृशेत् ॥ २ ॥

लययोगका साधन कहेहैं अथ कहें जा मंत्रयोगके अनंतर आसन जो सिद्धासन तथा पद्मासन है ताहि दृढ बांधिकारि शांभवी जो खेचरीमुद्रा है सो धारनकरि सुषुम्ना ब्रह्मनाडीविषे सूक्ष्मतें सूक्ष्म जो नाद ताहि श्रवण करै ॥ २ ॥

चिणीति प्रथमे नादं चिंचिणीति द्वितीयके ॥ घंटानादस्तृतीये च शंखनादश्च-

तुर्थके ॥ ३ ॥ तंत्री पंचमेके नादे षष्ठे
तालं प्रचक्षते ॥ वंशीवाद्यस्तथा चान्यो
मृदंगस्तदनंतरम् ॥ ४ ॥ भेरीनादस्तथा
तत्र दशमेऽभ्रसमो भवेत् ॥ नवमं च परि-
त्यज्य दशमं यः समभ्यसेत् ॥ ५ ॥
भित्त्वा सर्वाणि कर्माणि चिदानंदायते
ततः ॥ ६ ॥

ता नादके चिंतमनविषे प्रथम चिणी ऐसा शब्द होवैहै दूसरें चिंचिणी तीसरे घंटा चौथे शंखनाद ॥ ३ ॥ पांचवें वीणा छठवां ताल कथन कर्योहै तथा सातवां वंशीवाद्य मृदंग ताके अनंतर है ॥ ४ ॥ तत्र नवमा भेरीशब्द तथ दशमें अभ्र कहें मेघसमान शब्द होवैहै नवम जो भेरी ताहि परित्यज्य अर्थात् अभ्यासकरि दशम जो नाद ताहि अभ्यास करै ॥ ५ ॥ सो संपूर्ण कर्मग्रंथि ताहि भेदनकरि ब्रह्मानंदकूं प्राप्त होवैहै ॥ ६ ॥

॥ अथ नादस्य फलम् ॥

चिंचिणी प्रथमं देहं द्वितीयं गात्रभंजनम् ॥
तृतीयं खेदनं याति चतुर्थे कंपते शिरः ॥ ७ ॥

पंचमे स्रवते तालुरमृतं दिव्यरूपिणम् ॥
भुक्त्कामृतं तथा षष्ठे वृद्धोपि तरुणो
भवेत् ॥ ८ ॥

अव नादके फलकूं वर्णन करैंहैं प्रथम देहविषे-
चिंचिणी होवैहै तथा दूसरे गात्रटूटवेकी न्याई
प्राप्त होवै तीसरे खेदकूं प्राप्त होवै तथा चतुर्थ नादविषे
शिरकंपन होवैहै ॥ ७ ॥ पंचमनादविषे तालु स्रवैहै
अर्थात् तालुविषे चंद्रमा तातैं अमृत दिव्यरूप स्रवैहै षष्ट
नादविषे वा अमृतकूं पान करि वृद्धपुरुषभी तरुण
होजाताहै ॥ ८ ॥

सप्तमे चास्ति विज्ञानं परावाचाष्टमं तथा॥
नवमं योगिनो देहे पुण्यो गंधो भवेद् ध्रु-
वम् ॥ ९ ॥ दशमं ब्रह्म संप्राप्य निर्वाण-
मधिगच्छति ॥ १० ॥

सप्तम नादविषे विज्ञान अर्थात् त्रैलोकज्ञता होवैहै तथा
आठमें परावाचा अर्थात् पशुपक्षियोंकी भाषा जानिवेकूं
समर्थ होवैहै नवें योगाभ्यासीकी देहविषे पुण्यगंध अर्थात्
अच्छी सुगंध उत्पन्न होवैहै ॥ दशमें ब्रम्हपदकूं प्राप्तहो
कर मोक्षकूं प्राप्तहोवै है ॥ ९ ॥ १० ॥

सदा नादानुसंधानात्क्षीयंते पापसंचयाः ॥ निरंजने विलीयेते निश्चितं चित्तमारुतौ ॥ ११ ॥

सदा सर्वदा नादके अनुसंधानतैं पापनके समूह नाशकूं प्राप्त होयहैं निर्गुण चैतन्यविषे निश्चयही चित्त और वायु लीन होय है ॥ ११ ॥

यथा निरिंधनो दीपो स्वयमेवोपशाम्यति ॥ तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयमेवोपशाम्यति ॥ १२ ॥

जिसप्रकार निरिंधन अर्थात् तैलवार्त्ती विना दीपक आपही आप शांत होवेहै तैसेहीं गुणदोषरूप "वृत्ति क्षय होनेतैं चित्त आपही आप शांतताकूं प्राप्त होयहै ॥ १२ ॥

निरंतरकृताभ्यासाद्योगी विगतकल्मषः ॥ सर्वदेहादि विस्मृत्य तदभिन्नः स्वयंगतः॥१३॥

निरंतर शुद्धचित्त होके जो योगी नादका अनुसंधान करैगा वह देहादिकर्मसे रहित आत्मासे अभिन्न होजायगा अर्थात् आत्मस्वरूप होजायगा ॥ १३ ॥

यः करोति सदाभ्यासं गुप्ताचारेण मानवः ॥ स वै ब्रह्मविलीनं स्यात् पापकर्मरतो यदि ॥ १४ ॥

जो मनुष्य गुप्ताचारकरिकै इसका अभ्यास करैगा वह यदि-पापकर्मरतभी होवै तौ उसकी मोक्ष होवैहै ॥ १४ ॥

. वद्धं तु नादवंधेन मनः संत्यज्य चापल- म् ॥ प्रयाति सुतरां स्थैर्य्यं छिन्नपक्षः खगो यथा ॥ १५ ॥

नादरूपी वंधनकरिकै वँधो भयो मन अपनी चंचलता छोडिदईहै जानै सो निश्चयकरि स्थिरताकूं पावै है जैसे पक्षहीन पक्षी आपहीं स्थिर होवै है ॥ १५ ॥

मकरंदं पिवन्भृंगो गंधं न त्यजते यथा ॥ शव्दासक्तं तथा चित्तं विषयान्न हि कां- क्षति ॥ १६ ॥

जैसे भ्रमर पुष्परसको पानकरते हुए गंधको नहीं छोडै है तैसेही नादमें आसक्त चित्त विषयनको नहीं कांक्षा करैहै ॥ १६ ॥

न रूपं न च संस्पर्शं न गंधं न च वै रसम् ॥ नात्मानं चापरं वापि योगी मुक्तः समा- धिना ॥ १७ ॥

न रूप है न स्पर्श है न गंध है न रस है न अपनी वा पराई आत्मा है केवल योगी समाधिकरिकै मुक्तहै ॥ १७ ॥

अभेद्यः सर्वशस्त्राणामशक्यः सर्वदेहिनाम् ॥ प्रनष्टश्वासनिश्वासो योगी मुक्तः समाधिना ॥ १८ ॥

सर्वशस्त्रनकरिकै अभेद्य अर्थात् वध्य नहींहैं संपूर्ण प्राणीनकरिकै अशक्य अर्थात् पराक्रमतैं रहित है प्रकर्षकरिकै नष्ट है श्वासनिश्वास जाकी ऐसो योगी समाधिकरिकै मोक्षरूप है ॥ १८ ॥

गोपनीयं प्रयत्नेन सद्यः प्रत्युपकारकः ॥ निर्वाणदायको लोके योगोऽयं मम वल्लभः ॥ १९ ॥

यह जो लययोग है सो प्रयत्नकरिकै गोपनीय है निश्चयकरिकै चित्तवृत्तियोंको नाशकारक है लोकविषे मोक्षको देनेवारो है इसहेतु यह लययोग हमको अत्यंत प्रिय है ॥ १९ ॥

लययोगोऽयमित्युक्तः सद्यो वै मोक्षदो नृणाम् ॥ यो योगेऽस्मिन्समारूढः पुरुषः कालवंचकः ॥ २० ॥

लययोगनाम जो योग हमने कहाहै सो निश्चयकरि

मनुष्योंको शीघ्रही मोक्षदाता है इस योगविषे समारूढपुरुष कालवंचक अर्थात् कालकी वंचनकरवेवारो होय है ॥ २० ॥

इति श्रीयोगमार्गप्रकाशिकायां लययोगवर्णनं
नाम द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

॥ अथ हठयोगवर्णनम् ॥

जगुस्तदंगाष्टकमुत्तमाशयं यमादिसंज्ञं मुनिवर्य्यसेवितम् ॥ समासतस्तस्य फलं च लक्षणं वदामि वृद्धर्षिमतानुरोधतः ॥१॥

अब हठयोग कथन करैंहैं जिस हठयोग वा राजयोगकी परंपरातैं यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि इसभेदसे ऋपिलोगोंने गान करैंहैं तथा याज्ञवल्क्यादिकरिकै सेवित हैं ता योगके समासफलकूं वा लक्षणकूं वृद्धऋपिअर्थात् याज्ञवल्क्यवशिष्ठादिकोंके मतके अनुसार वर्णन करौंहौं ॥ १ ॥

प्रात्याहारासनध्यानप्राणायामास्तथैव च ॥
धारणाऽथ समाधिश्च हठयोगेति गद्यते ॥२॥

आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि इसप्रकार षडंग हठयोगकेविषे कथन करेहैं तथा अष्टांगभी हैं ॥ २ ॥

यमश्च नियमश्चैव प्राणायामश्चतुर्थकम् ॥ तृतीयं चासनं पूर्वं प्रत्याहारस्तु पंचमम् ॥ ३ ॥ धारणाथ समाधिश्च त्वष्टकं सौख्यदायकम् ॥ तत्रैव दशधांगानि यमस्य नियमस्य च ॥ ४ ॥

यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि इसप्रकार अष्टांगभी सौख्यदायक हठयोग है तहांहीकेविषे यम वा नियमके दश दश प्रकारके अंग वर्णन करेहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

॥ अथ यमलक्षणम् ॥

सत्यमार्जवमास्तेयमहिंसा च मिताशनम् ॥ क्षमा दया धृतिः शौचं ब्रह्मचर्य्यं परिग्रहः ॥ ५ ॥ एते च मुनिभिः पूर्वैः कथितास्तु यमा दश ॥ ६ ॥

यम निरूपण करैहैं सत्य आर्जव अस्तेय अहिंसा मिताशन क्षमा दया धृतिः शौच ब्रह्मचर्य्यधारण इनकरिके पूर्वकालविषे यम कहाहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

॥ अथ नियमलक्षणम् ॥

जपस्तपो दानमथागमश्रुतिस्तथास्तिकत्वं व्रतमीश्वरार्चनम् ॥ तथाप्तितोषो मतिरप्यपत्रपा बुधैर्दशैते नियमाः समीरिताः ॥ ७ ॥

॥ अथ आसनानि ॥

तथा नियमलक्षण कहैहैं जप, तप, दान, वेदांतश्रवण, आस्तिक्य, व्रत, ईश्वरपूजन, यथालाभसंतोष, मति, लज्जा, बुध कहैं योगवेत्ता तिनने ये दश नियम कथन करेहैं तथा यमनियमके फलकूं योगसूत्रमें कथनकरैहैं "सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्" चिरकालपर्यंत सत्यवाक्य पालनकरनेसे तिसपुरुषका वाक्य सत्यही होवैहै"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्"जिसकालविषे अस्तेयवृत्तकी दृढता होवैहै तौ सर्वदिशाओंसे मणिमुक्ताफलादि आनिकर प्राप्तहोवैहै"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः"चिरकालपर्य्यंत अहिंसाव्रतपालनकरनेतैं ही तिसपुरुषके समीप वैरत्यागकर नकुलसर्प मृगसिंह आनंदपूर्वक विचरतेहैं"ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः"ब्रह्मचर्य्य वृत्तके स्थिर होनेतैं जो जप तप व्रतादिकरूपक्रिया सो सब वीर्यवती होतीहैं तथा आप सिद्धभया पुरुष अन्य

साधकोंको ज्ञानोपदेश देवैहै "संतोषादनुत्तमसुख-लाभः" चिरकाल संतोष धारणकरनेतैं अनुत्तम सुखका लाभ होवैहै ॥ ७ ॥

॥ अथासनानि ॥

सिद्धं च पद्मं च सिंहासनं च भद्रासनं कूर्म्ममयूरपीठम् ॥ एतानि सर्वाणि भया-पहानि सर्वेषु मुख्यानि विवर्णितानि ॥८॥

आगे हठयोगका तृतीय अंग जो आसन है सो वर्णन करैहैं सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन भद्रासन, कूर्मासन, मयूरासन जो हैं सो संपूर्ण जो राजस तामसधर्मसे वात-पित्तकफादिकोंकी बाधा ताहि दूरिकरिबेवारे हैं तथा संपूर्ण योगमंत्रादि तिनकेविषे येही आसन मुख्य हैं वैसे आसन तौ बहुत हैं सो वार्त्ता गोरक्षशतकविषे कथन-करीहै ॥ यथा—आसनानि च तावंति यावंत्यो जीवजातयः ॥ एतेषामखिलान्भेदान्विजानाति महेश्वरः ॥ १ ॥ अर्थ—आसन तहांतकहैं जहांतक जीवजाति हैं इनके संपूर्ण भेदनको केवल शिवजीही जानतेहैं यातैं मुख्य मुख्य आसन कहेहैं तथा साधनांशमुखतैं जानलेनो ॥ ८ ॥

चतुराशीतिपीठेषु चतुष्कं योगिनो मतम्॥
सिद्धं पद्मं तथा भद्रं सिंहासनमितीरितम्॥९॥

चौरासी आसन श्रीशिवजीने मुख्य वर्णन करेहैं तिनमें चारि आसन योगीजनोंके संमत हैं सिद्धासन १ पद्मासन २ भद्रासन ३ सिंहासन ४ सोई वार्त्ता योगप्रदीपिकाविषे कथनकरीहै ॥ यथा—चतुराशीत्यासनानि शिवेन कथितानि च ॥ तेभ्यश्चतुष्कमादाय सारभूतं ब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥ अर्थ—चौरासी आसन शिवजीने पूर्वकाकालमें कथन करेहैं तिनमें चारि आसन सारभूत ग्रहणकरि कहौंहौं "सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रंचेति चतुष्टयम्" सिद्धासन पद्मासन सिंहासन भद्रासन ये चारि आसन मुख्य हैं साधनांश गुरुमुखतैं जानलेनो ॥ ९ ॥

योनिमूले वामपादं दक्षपादं तथोपरि ॥
भ्रुवोरंतर्गता दृष्टिः पवनाभ्यासं समाचरेत् ॥ १० ॥ एतत्सिद्धासनं प्राहुः केचिद्वज्रासनं विदुः ॥ सिद्धासनमिदं श्रेष्ठं पूजितं योगिपुंगवैः ॥ ११ ॥

योनिस्थान कहैं लिंग और गुदाके मध्य अर्थात् लिंगतैं नीचे और गुदातैं ऊंचे जो योनिस्थान है, ताविषे वामपाद अर्थात् वामपादको लगावै तिस वामपादके ऊपर दक्षिणचरण स्थापित करिकै दोनों भ्रूके मध्यमें दृष्टि स्थापितकरि पवनका अभ्यास करै ॥१०॥ इसको सिद्धलोग सिद्धासन कथन करैहैं और कोई कोई वज्रासन तथा मुक्तासनभी कहते हैं यह जो सिद्धासन है सो संपूर्ण आसनकेविषे श्रेष्ठ है और संपूर्ण योगीजनकरिकै पूजित अर्थात् अभ्यास करचो जाइ है ॥ ११ ॥

॥ अथ पद्मासनम् ॥

ऊर्वोपरि सुसंस्थाप्य शुभे पादतले उभे॥
ऋजुकायः समासीन इति पद्मासनं भवेत् ॥ १२ ॥

दोनों जंघानके ऊपर दोनों पाव धारनकरिकै ऋजु कहैं सीधाशरीरसै बैठिजावै इसप्रकार पद्मासन कहावैहै॥१२॥

॥ अथ कुक्कुटासनलक्षणम् ॥

पद्मासनसमं बध्वा जानोरभ्यंतरे करौ ॥
उत्थाप्य वासनादूर्ध्वं कुक्कुटं तद्वदेद्बुधः॥१३॥

कुक्कुटासनबंधस्थो वायुसाधनमाचरेत् ॥ निहंति सकलान्रोगानंधकारं यथा र-वि: ॥ १४ ॥

पूर्वोक्त जो पद्मासन ताहि समान बांधिकरि दोनों हाथ जानूनके भीतर करिकै आसनतैं ऊपर उठै अर्थात् पृथ्वी छोडदे आसन बांधिरहे इसको कुक्कटासन कहते हैं, १३ कुक्कुट आसन बांधिकरि जो पुरुष वायुका साधन करै सो संपूर्ण रोगनकूं दूरि करैहै जैसे सूर्य अंधकारकूं नाशक-रैहै ॥ १४ ॥

॥ अथ भद्रासनलक्षणम् ॥

सीवन्या दक्षिणे भागे दक्षगुल्फं तु धार-येत् ॥ वामभागे वामगुल्फमिति भद्रा-सनं भवेत् ॥ १५ ॥

सीवनीके दक्षिणभागविषे दाक्षिणगुल्फ अर्थात् दाहिने पावका टकना स्थापित करि वामभागविषे वामगुल्फ अर्थात् वामपावका टकना धारण करै इसको भद्रासन कहैहैं ॥ १५ ॥

॥ अथ सिंहासनलक्षणम् ॥

गुदं निरुध्य पादाभ्यां हस्तौ जान्वोस्तु धार-येत् ॥ मुखं विदार्य्य नासाग्रं निरीक्षेत्सुसमा-

हितः॥१६॥ह्येतत्सिंहासनं प्रोक्तं योगशास्त्र विशारदैः ॥ १७ ॥

गुदा जोहै ताहि दोनों पावनकारिकै रोकै दोनों हाथ घुटुवनपर धरै और मुख फैलाय नासिकाके अग्रभागकूं अच्छीतरहसे देखे ॥ १६ ॥ इसको योगशास्त्रवारे सिंहासन कथन करैंहैं यह बहुतही अच्छा आसन है॥ १७ ॥

॥ अथ कूर्मासनलक्षणम् ॥

पद्मासनं समं स्थाप्य जान्वोरभ्यंतरे करौ ॥ ताभ्यां शिरः समाकृष्य एवं कूर्मासनं भवेत् ॥ १८॥कूर्मो यथा निजस्थाने अंगं संकोचयेद्ध्रुवम् ॥ तद्वत्संकोचयेद्योगी कूर्म्मासनमतांतरे ॥ १९ ॥

पद्मासनसमान स्थापितकारै घुटुवनके अनंतर जो हात तिनकरिकै अपना जो शिर ताहि ग्रहणकरै सो कूर्मासन होवै है ॥१८॥ जैसे कूर्म्म अपने स्थानविषे अपने अंगका संकोचन करैहै तिसप्रकार योगी अपने अंगका संकोचन करै यह मतांतरकेविषे कूर्मासन होवैहै ॥ १९ ॥

॥ अथ मयूरासनलक्षणम् ॥

हस्तौ धरामभिस्पर्श्य नाभिपार्श्वे तथोपरि॥ दंडवच्च समासीनो मयूरं च प्रकीर्त्तितम्॥२०॥

दोनों हाथ पृथ्वीमें धारिकारि तिसके टिहुनीनके ऊपर नाभिपार्श्व अर्थात् पेट धारिकारि दंडवत् अर्थात् सीधा शरीरकारि स्थित होवे इसको मयूरासन कहैहैं जो जठराग्निको वर्द्धनकरैहै ॥ २० ॥

॥ अथ शवासनलक्षणम् ॥

मृतवच्छयनं भूमौ श्रमे जाते शवासनम् ॥ एतत् सुखकरं नित्यं श्रमाभावे न चाभ्य-सेत् ॥ २१ ॥

मृतककी तरह पृथ्वीमें शयनकरना इसको शवासन कहैहैं यह जो आसन सो सुखकारक है जब श्रम न हो तब इसका अभ्यास नहीं करना चाहिये और आसनोंके लक्षण वा साधनांशगुरुमुखतैं जानिवेके योग्य है ॥ २१ ॥

अनलसत्वमुपस्थबलक्षयोऽनिलनिरोध पटुत्वमनूमिता॥ पवनमंथरताप्युपजायते स्थिरमतेरिह पीठजयात् किल ॥ २२ ॥

चिरकालके अभ्यासकरनेसे जिसकालविषे आसन-का जय होवैहै तिसकालविषे अनलसत्व कहिये योगाभ्या-सविषे महाविघ्नरूप जो आलस्य ताकी निवृत्ति होवै है, और उपस्थबलक्षय कहिये लिंगेंद्रियके बलकाभी क्षय होवैहै अनिल जो प्राणवायु है तिसके निरोधकरनेमें

सामर्थ्य होवैहै तथा अनूर्मिता कहिये क्षुधा,पिपासा, शीत, उष्ण, राग, द्वेष ये षट् ऊर्म्मियां हैं सो विनाशकूं प्राप्त होवैहैं पवनमंथरता कहिये प्राणवायुकी गतिभी मंद मंद होवैहै काहेसे कि कोई श्रममें तथा गमनमें जैसी शीघ्रता तैसी वैठनेसमयमें नहीं होती तातैं स्थिरमति जो साधकपुरुष वो आसनके जय होनेसेही संपूर्ण सिद्धिको प्राप्त होवैहै ॥ २२ ॥

अथ नादानुसंधाने वाय्वभ्यासपरायणः॥ ब्रह्मचारी जितक्रोधी त्यागी योगरतः सदा ॥ २३ ॥ मिताहारी भवेत्सिद्धो ह्यब्दादूर्ध्वं न संशयः ॥ २४ ॥

अथ जाके अनंतर नादके अनुसंधानविषे पवनके अभ्यासविषे परायण ब्रह्मचारी जितक्रोधी त्यागी कांक्षा रहित योगका प्रेमी निरंतर ॥ २३ ॥ प्रमाणका भोजन करै इस प्रकार एकवर्षते ऊपर सिद्ध होवैहै संशय नहीं है ॥ २४ ॥ आगे प्राणायामके निमित्त प्रथम क्रिया निरूपण करैहैं ॥

॥ अथ क्रियानिरूपणम् ॥

त्राटकं नौलिकं नेतिर्धौतिर्वस्तिस्तथैव च ॥ कपालभातिर्विख्याता षट् कर्माणि प्रचक्षते ॥ २५ ॥

त्राटक १ नौलि २ नेति ३ धौति ४ वस्ति ५ और कपालभाति ६ ये षट्कर्म्म महात्माओंने कहेहैं इनकरिकै शरीरकी शुद्धि होवैहै ॥ २५ ॥

॥ त्राटकलक्षणम् ॥

समीपमपि दूरस्थं सूक्ष्मं लक्ष्यं विलोकयेत् ॥ अश्रुसंपातनं यावत्तावन्मुद्रां समाचरेत् ॥ २६ ॥

समीप वा दूर जो कुछ सूक्ष्म लक्ष्य उसको इकटक जब तक अश्रुपात न होवै तवतक देखै इसकर्मको योगीजन त्राटककर्म कहेंहैं यह संपूर्ण रोग नेत्रके विनाशकरैहैं ॥२६॥

॥ नौलिलक्षणम् ॥

यथा नदीनां बहुतोंबुवेगादावर्त्तवेगे ह्युदरं प्रचाल्यते ॥ मंदाग्निसंदीपनका सदैव हठक्रिया मुख्यतमा च नौलिः ॥ २७ ॥

जैसे नदीनमें बहुतसे जलके वेगतें भ्रमर उत्पन्न होवैहै तैसेही बडे वेगकारिकै उदर वाम दक्षिण भ्रमावै यह क्रिया सदैव काल मंदाग्निकूं बढावनेवारी है यह संपूर्ण हठयोगविषे नौलिकर्म्म मुख्य है ॥ २७ ॥

यावन्न प्राप्यते नौलिः सदैवानंददायिनी॥
तावत्क्रियायां षट्कर्म्मं निष्फलं नैव कारयेत् ॥ २८ ॥

सदैव काल आनंदके देनेवारी जवतक नौलिक्रिया न करना हो तवतक और संपूर्ण षट् कर्म्म अर्थात् क्रिया प्राप्त निष्फल है नहीं करना चाहिये काहेतें कि इसविना कोई ठीक नहीं होवेंहै ॥ २८ ॥

॥ नेतिलक्षणम् ॥

सूत्रं वितस्तिमात्रं तु सुस्निग्धं ग्रंथिवर्ज्जितम्॥
गुरूपदिष्टमार्गेण नासारंध्रे प्रवेशयेत् ॥ २९ ॥
मुखान्निष्कासयेच्चापि नेतिं सिद्धाः प्रचक्षते ॥
निहंति मांस्तकान्रोगान् दिव्यदृष्टिकरी सदा ॥ ३० ॥

अच्छासूत्र वितस्तिमात्र ग्रंथिरहित मोममें भिगोइ गुरुके वताये मार्गकरिके नासिकामें प्रवेशकरै फिरि मुखसे वाहर निकारै इसक्रियाको सिद्धलोग नेति कहतेहैं सो क्रिया मस्तकके रोगोंको दूरिकरनेवारी है और नेत्रनकूं दिव्यदृष्टि करनेवारीहै ॥ २९ ॥ ३० ॥

---

१ मस्तकभवान्।

॥ अथधौतिलक्षणम् ॥

सूक्ष्मवस्त्रं समानीय हस्तविंशप्रमाणतः॥
चतुरंगुलविस्तारं ग्रसेदुष्णेन वारिणा ३१॥
भ्रामयित्वा जलेनव वस्त्रं निष्कासये-
च्छनैः॥ युक्तंयुक्तंच गृह्णीयात् युक्तं युक्तं
पुनस्त्यजेत् ॥३२॥ अभ्यसेद्भोजनादूर्ध्वं
भोजनांते न चाभ्यसेत्॥ श्वासकासादिका
रोगाः कफवातसमुद्भवाः॥ ३३॥ कुष्ठप्लीहा
तृषा मूर्च्छा भ्रमदाहज्वरामयाः॥कर्म्मणा-
नेन शुद्धेन क्षीयंते सकला मलाः॥ ३४॥

अच्छा सूक्ष्म कहे महीन वस्त्र वीस हाथ लांमा चारि अंगुल चौडा पगडीके सो टूक ग्रहण करिकै उष्णजलतैं धीरे धीरे निगले ॥३१॥ और नौलिकर्म्मकारिकै उदरमें भ्रमावै फेर धीरे धीरे बाहर निकालै युक्ति युक्तिसों तौ ग्रहण करै और युक्ति युक्तिसों फेरि छोडै इसप्रकार धौतीकर्म्म होवैहै ॥ ३२ ॥ और भोजनसे पहिले इसका अभ्यास करै भोजनकारिकै नहीं श्वास कास आदिसे कफ वाततैं उत्पन्न जे रोग ॥३३॥ वा कुष्ठ प्लीहा तृषा मूर्च्छा भ्रम दाह ज्वर आमय और संपूर्ण जे मल ते यह धौतिकर्म्मकरिकै नाशकूं प्राप्त होवैहैं ॥ ३४ ॥

॥ अथ बस्तिलक्षणम् ॥

नाभिमात्रे जले स्थित्वा गुदेनाकुंचयेज्जलम्॥ पुनः प्रचालनं कुर्य्यात् बस्तिदोषविनाशनी ॥ ३५ ॥ अशेषदोषामयशोषिणी या मंदाग्निसंदीपनिका सदैव ॥ आरोग्यता बिंदुजयप्रदायिनी बस्तिक्रिया योगमते प्रसिद्धा ॥ ३६ ॥

नाभिमात्र जलके विषे स्थित होकर गुदाके आकुंचन करिकै जलकूं आकर्षण करै फेरि पूर्वोक्त जलकरिकै भ्रमण कराय परित्याग करै यह बस्तिकर्म्म संपूर्ण दोषके नाशकरनेवारो है ॥ ३५ ॥ संपूर्ण दोषतैं उत्पन्नभयो जो आमय अर्थात् आमाशय ताके शोषण करनेवारी और मंदाग्निको बढावनेवारी और आरोग्यताको देनेवारी बिंदुको जयकी देनेवारी ऐसी बस्ति क्रिया योगमतमें प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥

॥ अथ कपालभातिलक्षणम् ॥

रेचकं पूरकं चैव द्रुतं पूरकरेचकौ कपालभातिर्विख्याता लोहकारस्य चर्म्मवत् ॥ ३७ ॥ मंदाग्निदीपनी चैव कफदोषविशोषणी ॥ ३८ ॥

रेचक और पूरक शीघ्रकरिके फिरि पूरकरेचक कपालभाति है नाम जाको जैसे लुहारकी धौंकनीसे वारंवार वायु आवे जावैहै तिसप्रकारही कपालभातिक्रिया होवैहै ॥ ॥ ३७ ॥ सो कैसीहै कि मंदाग्निके वढावनेवारी संपूर्ण कफके दोषोंकूं नाशकरैहै ॥ ३८ ॥

॥ अथ गजकर्णीक्रियालक्षणम् ॥

अपानमूर्द्धमुत्थाप्य यद्भुक्तं तत्परित्यजेत्॥ ॥ ३९ ॥ गजकर्णी समाख्याता वश्या नाड्यो भवेद्ध्रुवम् ॥ ४० ॥

अपानवायु जो अधोगतिवायु है ताहि ऊपर कंठनालमैं खींच जो कुछ भुक्त अर्थात् खट्टा मीठा पदार्थ खाया हुवा है ताहि परित्यजेत् नाम वाहर निकालदेय इसको कपिलाचार्य्यादिने गजकरणीक्रियाकहाहै इसक्रिया कर्म्मतैं संपूर्ण नाडी वशीभूत होवैहैं यह षट्कर्म्म करिकै पृथक् है परंतु षट्कर्म्मंहीके अंतर्गत कोऊ मानैंहैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

षट्कर्म्मप्रभावेण क्षीयंते सकला मलाः ॥ ब्रह्मरंध्रं ततो वायुरनायासेन गच्छति ॥ ४१ ॥ गुह्याद्गुह्यतरं दिव्यं घटशोधनकारकम् ॥ सामान्यमानुषस्यैव न देयं यस्य कस्यचित् ॥ ४२ ॥

इस षट्कर्मके प्रभावकरिके संपूर्ण मलनका नाश होवैहै तदनंतर वायु अनायास विना श्रमकरिके ब्रह्मरंध्र जो सुषुम्नामार्गताविषे गमनकरैहै ॥ ४१ ॥ ये षट् कर्म गुह्यते गुह्य हैं और दिव्य हैं घट जो शरीर ताके शोधनकारक हैं य किसी सामान्यमनुष्यको न देना उचित है ॥ ४२ ॥

॥ अथ समाधिवर्णनम् ॥

चित्तं न साध्यं विविधैर्विचारैर्वितर्कवादैरपि वेदवादिभिः ॥ तस्मात्तु तस्यैव हि केवलं जयः प्राणो हि विद्येत न चान्यकश्चित् ॥ ४३ ॥

नानाप्रकारके विचार तथा शास्त्रार्थादि तथा वेदश्रुति कथन करना इसकरके मनसाध्य नहीं होवैहै तिसके जय करनेमें अर्थात् वश करनेमें केवल एक प्राणवायुही समर्थ है अन्य कोई उपाय नहीं ॥ यथा—भर्तृहरिकृत ॥ भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचंचला आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलीनांबुवद्भंगुरम् ॥ लोलायौवनलालना तनुभृतामित्याकलय्यद्रुतं योगे धैर्य्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विधत्ते बुधाः ॥ १ ॥ अर्थ—विस्तृत मेघमें चमकतीहुई विजुलीसमान देहधारियोंका भोग चंचल है वायुसे

छिन्न भिन्न मेघजलके समान आयुभी नाशमान है और यौवनका उमंगभी स्थिर नहीं है तातें हे पंडितो ऐसा समझिकरि समाधिकी सिद्धिसे सुलभ जो योग तिसमें बुद्धि धारण करो ॥ ४३ ॥

॥ अथ समाधिकालः ॥

एकश्वाससमयी मात्रा प्राणायामे निगद्यते ॥ अधमे द्वादश प्रोक्ता मध्यमे द्विगुणाः स्मृताः ॥ ४४ ॥ उत्तमे त्रिगुणा मात्राः प्राणायामे प्रचक्षते ॥ प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः ॥ ४५ ॥ प्रत्यहारद्विषट्केन धारणा परिकीर्तिता ॥ भवेदीश्वरसान्निध्यं ध्यानं द्वादश धारणाः ॥ ध्यानं द्वादशकं यत्स्यात्सा समाधिर्विधीयते ॥ ४६ ॥

सोवतपुरुषकी एकश्वासकूं एकमात्रा प्राणायाममें कथन करैहैं सो प्राणायाम १२ मात्रासे अधम और चौवीस २४ से मध्यम ॥४४॥ और छत्तीस ३६ से उत्तम प्राणायाम होवैहं और १२ प्राणायामसे १ प्रत्याहार होताहै ॥ ४५ ॥ और १२ प्रत्याहारसे धारणा तथा १२

धारणासे ११ ध्यान और १२ ध्यानसे एक समाधि वह अपूर्व आनंददेवेवारी है सो वार्ता गीताजीमें कहीहै ॥ यथा—यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥ अर्थ—जिससमाधिकूं प्राप्त हो पुरुष और लाभ अधिक नहीं मानैहै इससमाधिसुखकूं मैं कहा वर्णन करूं इसकूं तौ कोई महात्मा सम्यक् प्रकार वर्णन नहीं करिसकते जो करता वही जानता अन्य नहीं सो वार्ता दक्षस्मृतिमें कहीहै॥यथा—स्वसंवेधे हि तद्ब्रह्म स्त्रीकुमारीसुखं यथा अयोगी नैव जानाति जात्यंधो हि यथा घटम् ॥ १ ॥ अर्थ—सोई उसब्रह्मकूं सम्यक् प्रकार जानैहै जैसे यौवन अवस्थाकी स्त्री पतिसंभोगजन्य सुखकूं आपहीं अनुभव करैहै तैसे अयोगी उस ब्रह्मकूं नहीं जानसकते जैसे जन्मांधपुरुपकूं घटके स्वरूपका बोध प्रतीत नहीं होता॥दोहा—अज्ञानीकों जगलटौ,ज्ञानवानकूं ऐन ॥अंधेकों जिमि अंधग्रह दृगवारेकों चैन ॥ ४६ ॥

॥ अथ प्राणायामः ॥

अथासने दृढीभूते सुशोभनमठे यदा ॥
गुरुं नत्वा शिवं चैव प्राणायामस्ततोभ्यसेत् ॥ ४७ ॥

प्राणायामनिरूपण कथन करैंहैं सुंदर जो मठ तामें आसन वांधिकरि अपने गुरु वा योगाचार्य्य शिव जो हैं तिनहि प्रणाम करिके अनंतर शिक्षापूर्वक प्राणायाम करे ॥ ४७ ॥

समकायः प्राञ्जलिश्च प्रणम्य च गुरून्सुधीः ॥ दक्षे वामे च विघ्नेशं क्षेत्रपालांबिकां पुनः ॥ ४८ ॥

समकाय हाथ जोडिकर गुरु जो हैं वा वाम दक्षिण विघ्नेश गणेश वा क्षेत्रपाल तथा जगन्माता पृथ्वीकूं प्रणाम करैं ॥ ४८ ॥

प्राणायामशरीरस्य वायोस्तद्रन्निरोधनम् ॥ आचार्याणां तु केषांचिद्रेचकपूरककुंभकैः ॥ ४९ ॥

अव प्राणायामको लक्षण कहें हैं शरीरके भीतर भरेहुए वायुके निरोधकूं प्राणायाम कहें हैं तथा कोई आचार्य्य रेचक पूरक कुंभक इनकरिके प्राणायाम कहैंहैं ॥ ४९ ॥

रेचकाद्रेचकश्चैकः पूरकात्पूरको मतः ॥ सहितः केवलश्चेति कुंभकोपि द्विधा भवेत् ॥ ५० ॥

रेचक कर्मकरिकै रेचकपूर्वक प्राणायाम, पूरक कर्म-करिकै पूरकपूर्वक प्राणायाम सहितकुंभक तथा केवल कुंभक इसप्रकार कुंभककेभी दो भेद हैं ॥ ५० ॥

रेचकात् पूरकाच्चैव सहितः कुंभकः स्मृतः॥
आभ्यां विरहितः कुंभः केवलस्योपजा-
यते ॥ ५१ ॥

रेचक वा पूरक कर्मकरिकै जो प्राणायाम है सो सहित कुंभक जानिये रेचक वा पूरक इन करिकै रहित जो कुंभक सो केवलकूं प्राप्त करैहै अर्थात् यहीसों केवलकुंभक कहै हैं ॥ ५१ ॥

॥ अथ कुंभकाष्टभेदाः ॥

उज्जायी शीतली भस्त्रा सीत्करी भेदनी
तथा ॥ प्लावनी मूर्छिका चैते भ्रामरीत्यष्ट-
नामकाः ॥ ५२ ॥

अव अष्टप्रकारके कुंभकभेद वर्णनकरैं हैं उज्जायी, शीतली, भस्त्रा, सीत्करी, भेदनी, प्लावनी, मूर्छिका, भ्रामरी ये अष्टनामकी कुंभकक्रियाके अष्टभेदहैं ॥ ५२ ॥

॥ उज्जायीलक्षणम् ॥

वायुमाकृष्य नाडीभ्यां पूरयेदुदरं द्रुतम् ॥
अत्यंतकुंभकं कृत्वा रेचनं तु शनैः

शनैः ॥ ५३ ॥ गुलमप्लीहोदरान् रोगान् वातपित्तकफोद्भवान्॥उज्जायी भस्त्रिका द्वौ च कुंभकेमे निहंति हि ॥ ५४ ॥

वायु जो है ताहि दोनों नाडिनकरिके शीघ्रतासे उदरको पूर्ण करै अत्यंत कुंभक अर्थात् वडी देरतक कुंभक करै फिर शनैः शनैः रेचक करै यह उज्जायी कुंभक है॥५३॥ यह उज्जायी कुंभक तथा भस्त्रिका कुंभक ये दोनों गुल्म तथा प्लीहा और वात पितोद्भव उदरके जे रोग हैं तिनको निश्चय हनन करते हैं ॥ ५४ ॥

॥ अथ शीवलीलक्षणम् ॥

काकचंच्वा पिवेद्वायुमेकदेशे विचक्षणः ॥ इशत्वं प्राप्य तं योगी अब्दादूर्द्ध्वं न संशयः ॥ ५५ ॥

एक स्थानके विषे विचक्षण जो योगी सो जिह्वाको काकचंचुकी नाई करिकै वायुको पान करै यह शीतली कुंभक है यातें येगी एक वर्षते ऊर्ध्व ईशत्वको प्राप्त होवै है यामें कोई संशय नहीं ॥ ५५ ॥

॥ अथ भस्त्रिकालक्षणम् ॥

चर्म्मवल्लोहकारस्य वायुं वेगेन पूरयेत्॥पुनर्विरेचयेत्तद्वत् पूरयेच्च तथाविधि ॥५६॥

लोहकारके चर्म्मकीनांई वेगकरिकै वायुको पूरण करै फिरि तिसी तरह छोडै फिरि प्रथमवत् पूरण करै ॥ ५६ ॥

आपूर्य ह्युदरं पश्चात् कुंभकं कारयेद्बुधः॥ सीत्करीत्युष्णसमये शीतली च तदैवहि ॥ ५७ ॥ भस्त्रिका सर्वदा पूज्या ब्रह्मरंध्रविभेदनी ॥ ५८ ॥

पीछे उदरको पूरण करै प्रातः बुध कुंभकको करै सो भस्त्रिका है सीत्करी और शीतली कुंभक उष्णसमयमें करीजाय है ॥ ५७ ॥ ब्रह्मरंध्रके भेदन करिवेवारी जो भस्त्रिका सो सर्वदा नाम सब समयमें पूज्य है अर्थात् सब समयमें करी जावै है ॥ ५८ ॥

जिह्वया वायुमाकृष्य कुंभकं कारयेत्सुधीः ॥ कुंभयित्वा यथाशक्ति भूयो घ्राणेन रेचयेत् ॥ ५९ ॥

जिह्वाकरिकै वायुको खींचकरि बुद्धिमान योगी कुंभक कों करै यथाशक्ति कुंभक करिकै नासिकातैं रेचन करै अर्थात् वायुकूं छोडे ॥ ५९ ॥

॥ अथ सीत्करीलक्षणम् ॥

रूपलावण्यसंपन्नो योगी भवति भूतले ॥ न निद्रा न क्षुधा तस्य योगिनो बाधते भृशम् ॥ ६० ॥

यह सीत्करी कुंभक करेतैं रूप लावण्य करिकै संपन्न योगी भूतलके विषे होवैहै ताको निद्रा वा क्षुधाकी बाधा नहीं होवे है ॥ ६० ॥

॥ अथ भेदनीलक्षणम् ॥

आकेशपादपर्य्यंतं कुंभकं रोचयेत् खगम्॥ सूर्य्यनाड्या समाहृत्य बहिःस्थं पवनं सुधीः ॥ ६१ ॥

बुद्धिमान्योगी सूर्य्यनाडी करिकै बाहिरके वायुकों शीशतैं पादपर्य्यंत कुंभकरूपी जो पक्षी ताहि रोचयेत नाम धारणकरै ॥ ६१ ॥

यदा श्रमो भवेद्देहे ततो चंद्रेण रेचनम्॥ श्रमशीतहरी पुंसां जठराग्निविवर्द्धनी ॥६२॥

देहमें जो श्रम होयतौ चंद्रनाडीकरिकै वह वायुको रेचन करिदेवै सो भेदनी कुंभक है यह श्रम और शीतके हरनकरिवेवारी और जठराग्निको बढावनेवारी पुरुपनके हेतु जाननी ॥ ६२ ॥

॥ अथ प्लावनीलक्षणम् ॥

उद्गाररूपिणं प्राणं पूरयेदुदरं प्रति॥तदा जले प्यगाधे हि तिष्ठते पद्मपत्रवत् ॥ ६३ ॥

उद्गाररूपी प्राण जो पवन ताहि उदरमें पूरित करै तौ अगाध जो जल ताके विषे निश्चयकरिकै पद्मपत्रकी नाई स्थित होवै याको प्लावनी कहैं हैं ॥ ६३ ॥

॥ अथ मूर्च्छिकालक्षणम् ॥

प्राणमाकृष्य नाडीभ्यां स्थापयेच्चुबुकं हृदि ॥ मूर्छिकाकुंभकेयं तु मनोमूर्च्छा सुखप्रदा ॥ ६४ ॥

नाडीनकरिकै प्राणवायुको आकर्षणकरिकै चिबुकको हृदयके ऊपर स्थापित करै यह मूर्च्छिका कुंभक मनको मूर्च्छितकरिवेवारी और सुखप्रदा नाम सुखकी देवेवारी है ॥ ६४ ॥

॥ अथ भ्रामरीलक्षणम् ॥

पूरके भृंगवन्नादं भृङ्गीनादं विरेचने ॥ आनंदो जायते चात्र योगिनः कामरूपिणः ॥ ६५ ॥

पूरकके विषे भृंगनाद और विरेचनके विषे भृंगीनाद कामरूपी योगीको आनंद जब उत्पन्न करै तब भ्रामरी कुंभक होवैहै ॥ ६५ ॥

कामचारित्वमीशत्वं खेचरत्वं प्रयत्नतः ॥ अनेन विधिना योगी लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ६६ ॥

ग्रहणे क्षमः ॥ ७२ ॥ उत्कृष्टा खेचरी मुद्रा अवस्थायां मनोन्मनी ॥ कुंभकः केवलः श्रेष्ठो धन्यः पुण्यश्च मोक्षदः ॥ ७३ ॥

जा नाडीतें रेचन करै ताकरिकैही पूरक करै और अतिरोधतें धारण करै फेरि अन्यनाडीतें रेचन करै वेगतें नहीं करै जा कालविषे योगीकी नाडीशुद्धि अच्छीतरहसे होवैहै ताकालविषेही योगी प्राणसंग्रहणकरिवेमें समर्थ होवैहै ॥ ७२ ॥ जिसप्रकारसे संपूर्ण मुद्रानाविषे खेचरी श्रेष्ठ है, अवस्थानमें मनोन्मनी श्रेष्ठ है तिसप्रकार संपूर्ण कुंभक सूर्य्य भेदनादिकनमें केवल कुंभक श्रेष्ठ है, सो कुंभक मुद्रा धन्य है, तथा पुण्य है और मोक्षके देनेवारी है ॥ ७३ ॥

एवं क्रमेण षण्मासे केवलं प्राप्नुयाच्छुभम् ॥
कुंभके केवले प्राप्ते उपतिष्ठंति सिद्धयः ॥७४॥

पूर्व कहेहुए प्रकार रेचक पूरक, कुंभक क्रमकरिकै षट्मासविषै आपही आप केवलकुंभक प्राप्त होवैहै ॥ ७४ ॥

॥ अथ केवलकुंभकलक्षणम् ॥

रेचनाद्रेचकश्चैव पूरकात् पूरको भवेत् ॥
आभ्यां विरहितः कुंभः केवलश्चेति कथ्य

ते ॥ ७५ ॥ ॐमित्येकाक्षरं मात्रा प्रवदंति मनीषिणः॥ तालत्रयं तथा केचिन्मात्रा- संज्ञा प्रचक्षते ॥ ७६ ॥

केवलकुंभकके लक्षण कहेहैं कि रेचक करनेसे रेचक प्राणायाम और पूरक करनेसे पूरकप्राणायाम होवैहै रेचक. वा पूरक इन करिकै रहित जो कुंभक सो केवल- कुंभक कहावैहै सो जवतक केवलकुंभक प्राप्त न हो तवतक रेचकपूर्वक तथा पूरकपूर्वकही अभ्यास करना चाहिये सो अभ्यास मात्राके स्मरणपूर्वक करना योग्यहै ॥ ७५ ॥ मात्रा कहैं ओं यहही एक प्रणवको योगीजन मात्रासंज्ञा कथन करैहैं तथा कोई आचार्य्य तीनतालको भी कहैहैं ॥ ७६ ॥

नीचो द्वादशकं मात्रा मध्यमो द्विगुणा- स्तथा॥उत्तमो त्रिगुणा मात्राः प्राणायामे निगद्यते ॥ ७७ ॥ कनिष्ठे जायते स्वेदः मध्यमे कंपते शिरः ॥ उत्तमे चास्ति चोत्थानं धूमानंदस्तथैव च ॥ ७८ ॥

सो प्राणायाम वारहमात्राको कनिष्ठ तथा चौवीसमा- त्राको मध्यम व छत्तीसमात्राको उत्तम होवैहै ॥ ७७ ॥ कनिष्ठ प्राणायामविषे पसीना उत्पन्न होवैहै तथा मध्यममें

याकरिकैं कामचारित्व और ईशत्व तथा खेचरत्व और वांछितफल प्रयत्नपूर्वक योगीको प्राप्तहोवैं हैं ॥ ६६ ॥

इदानीं कथयिष्यामि मुक्तस्यानुभवं प्रियम् ॥ यल्लब्ध्वा लभते मुक्तिं पापयुक्तोऽपि मानवः ॥ ६७ ॥

इसकालविषे मुक्तपुरुष जे हैं तिनका जो प्रिय अनुभव तिसका वर्णन करैं हैं जिसको प्राप्तहोकरि पापयुक्त मनुष्यभी मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ६७ ॥

वपुःसमत्वं दहनप्रदीप्तिः नादस्फुरत्वं वदने सुकांतिः॥ प्रशांतचित्तत्वजितेंद्रियत्वमेतानि सर्वाणि ततो भवंति ॥ ६८ ॥

शरीरकी समता अर्थात् कृशता स्थूलतातैं रहित जठराग्निकी प्रदीप्ति, नादका स्फुटभाव अर्थात् प्रकाशहोन मुखकेविषे सुकांति प्रशान्ताचित्त होना वा जितेंद्रियत्व ये संपूर्ण वायुके साधनतैं प्राप्त होवैं हैं ॥ ६८ ॥

चंद्रनाड्या समाकृष्य वहिस्थं पवनं शनैः ॥ कुंभयित्वा यथाशक्ति रविणा रेचयेत्ततः ॥ ६९ ॥ भूयः सूर्येण

चाकृष्य पूरयेदुदरं तथा ॥ विधिना कुंभकं कृत्वा ततश्चंद्रेण रेचयेत् ॥ ७० ॥

प्राणायाम कहिकरि मलशोधक प्राणायाम वर्णन करैहैं चंद्रनाडी जो वामनाडी है ताकरिकै वायुकूं सम्यक्प्रकार आकर्षण करै फेरि यथाशक्ति कुंभक करै ततः ताके अनंतर सूर्य जो दक्षिणनाडी है ताकरिकै रेचन करै ॥ ६९ ॥ भूयः कहै फेरि सूर्य्य जो पिंगला नाडी है ताकरिकै वायुसे उदर पूर्ण करै फेरि विधिपूर्वक अर्थात् उड्यान जालंधर मूलबंध इनकरिकै कुंभककारि फेरि इडानाडीकरिकै रेचन करै ॥ ७० ॥

इडया पूरयेद्वायुं यथाशक्त्या तु कुंभयेत् ॥ ततस्त्यागः पिंगलया शनैरेव न वेगतः ॥ ७१॥

इडा जो वामनाडी ताकरिकै वायुको पूरणकरिकै यथाशक्ति कुंभक करै फेरि पिंगला जो दक्षिण नाडी ताकरिकै शनैः शनैः त्यजेत् वेगकरिकै नहीं छोडै वेगसे छोडनेमें वलहानि होवैहै ॥ ७१ ॥

यदा नाडी विशुद्धा स्यान्मलाः शुद्धिं प्रयांति च ॥ तदैव जायते योगी प्राणसं-

ग्रहणे क्षमः ॥ ७२ ॥ उत्कृष्टा खेचरी
मुद्रा अवस्थायां मनोन्मनी ॥ कुंभकः
केवलः श्रेष्ठो धन्यः पुण्यश्च मोक्षदः ॥ ७३ ॥

जा नाडीतें रेचन करै ताकरिकैही पूरक करै और अतिरोधतें धारण करै फेरि अन्यनाडीतें रेचन करै वेगतें नहीं करै जा कालविषे योगीकी नाडीशुद्धि अच्छीतरहसे होवैहै ताकालविषेही योगी प्राणसंग्रहणकारिवेमें समर्थ होवैहै ॥ ७२ ॥ जिसप्रकारसे संपूर्ण मुद्रानविषे खेचरी श्रेष्ठ है, अवस्थानमें मनोन्मनी श्रेष्ठ है तिसप्रकार संपूर्ण कुंभक सूर्य्य भेदनादिकनमें केवल कुंभक श्रेष्ठ है, सो कुंभक मुद्रा धन्य है, तथा पुण्य है और मोक्षके देनेवारी है ॥ ७३ ॥

एवं क्रमेण षण्मासे केवलं प्राप्नुयाच्छुभम् ॥
कुंभके केवले प्राप्ते उपतिष्ठंति सिद्धयः ॥७४॥

पूर्व कहेहुए प्रकार रेचक पूरक, कुंभक क्रमकरिकै षट्मासविषैं आपही आप केवलकुंभक प्राप्त होवैहै ॥ ७४ ॥

॥ अथ केवलकुंभकलक्षणम् ॥

रेचनाद्रेचकश्चैव पूरकात् पूरको भवेत् ॥
आभ्यां विरहितः कुंभः केवलश्चेति कथ्य

ते ॥ ७५ ॥ ॐमित्येकाक्षरं मात्रा प्रवदंति मनीषिणः॥ तालत्रयं तथा केचिन्मात्रा-संज्ञा प्रचक्षते ॥ ७६ ॥

केवलकुंभकके लक्षण कहेहैं कि रेचक करनेसे रेचक प्राणायाम और पूरक करनेसे पूरकप्राणायाम होवैहै रेचक वा पूरक इन करिके रहित जो कुंभक सो केवल-कुंभक कहावैहै सो जबतक केवलकुंभक प्राप्त न हो तबतक रेचकपूर्वक तथा पूरकपूर्वकही अभ्यास करना चाहिये सो अभ्यास मात्राके स्मरणपूर्वक करना योग्यहै ॥ ७५ ॥ मात्रा कहैं ओं यहही एक प्रणवको योगीजन मात्रासंज्ञा कथन करैहैं तथा कोई आचार्य्य तीनतालको भी कहैहैं ॥ ७६ ॥

नीचो द्वादशकं मात्रा मध्यमो द्विगुणा-स्तथा॥उत्तमो त्रिगुणा मात्राः प्राणायामे निगद्यते ।। ७७ ।। कनिष्ठे जायते स्वेदः मध्यमे कंपते शिरः ।। उत्तमे चास्ति चोत्थानं धूमानंदस्तथैव च ॥ ७८ ॥

सो प्राणायाम बारहमात्राको कनिष्ठ तथा चौवीसमा-त्राको मध्यम व छत्तीसमात्राको उत्तम होवैहै ॥ ७७ ॥ कनिष्ठ प्राणायामविषे पसीना उत्पन्न होवैहै तथा मध्यममें

शिर कांपेहै और उत्तममें आसन भूमिसे थोड़ा ऊपर उठैहै तथा मस्तकमें घूम वा चित्तको आनंद प्राप्त होवैहै ॥७८॥

प्रातःकाले च मध्याह्ने सायंकाले च कुंभकान् ॥ कुर्यादेवं चतुर्वारं तथैव चार्द्धरात्रके ॥ ७९ ॥ यदा संजायते स्वेदः मर्दनं कारयेत्सुधीः ॥ दृढता लघुता चैव तेन गात्रस्य जायते ॥ ८० ॥

प्रातःकाल अरुणोदयसे लेकरि सूर्योदयपर्य्यंत मध्याह्नकालमें तथा सायंकाल और अर्द्धरात्र इन चारों समय विषे कुंभकप्राणायाम करना योग्य है ॥ ७९ ॥ कनिष्ठप्राणायामविषे जो पसीना उत्पन्न होवै है ताकरिकै शरीरको मर्दन करै तासे गात्रकी दृढता वा लघुता प्राप्त होवै है ८०

वर्ज्यं चाथ प्रवक्ष्यामि योगे विघ्नकरं परम्॥ यस्य सेवनमात्रेण योगो नश्यति योगिनाम् ॥ ८१ ॥ कट्वम्लं लवणं रूक्षं तीक्ष्णं सार्षपकुघृतम् ॥ प्रातःस्नानं जन द्वेषं मोहं च प्राणिपीडनम् ॥ ८२ ॥

अब जाके अनंतर वर्जनीय वर्णन करैं हैं जाके सेवनमात्रसे योगीनको योग नष्ट होवै है ॥ ८१ ॥ कटु अम्ल

इमली इत्यादि अति लवण रूखो तीक्ष्ण सरसों पुराना घृत प्रातःकाल स्नान करना मनुष्योंसे वैरभाव रखना वा किसीस मोह करना वा हिंसा करना ॥ ८२ ॥

सेवनं पथि अग्निस्त्रीवह्वालापं प्रियाप्रियम् ॥ अतीव भोजनं त्याज्यं योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ८३ ॥

मार्गका चलना अग्निका सेवन और स्त्रीका सवन करना प्रिय तथा अप्रिय बहुत बोलना अत्यंत अधिक आहार करना तत्त्वदर्शी योगीको अवश्य इतनी वस्तु त्यागना योग्य हैं ॥ ८३ ॥

अथोपायं प्रवक्ष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ॥ सुस्निग्धं मधुराहारं मिष्टान्न तैलवर्जितम् ॥ ८४ ॥ घृतं क्षीरं मधुयुतं गव्यं धातोश्च पोषणम् ॥ मनोभिलषितं योग्यं ताम्बूलं चूर्णवर्जितम् ॥८५॥ वेदांतश्रवणं नित्यमेकांतगृहसेवनम् ॥ नामसंकीर्तनं विष्णोर्नियमानि समाचरेत् ॥८६॥ धृतिः क्षमा दया शौचं सुस्निग्धं सूक्ष्मवस्त्रकम् ॥ इत्येतानि सदा योगी नियमानि समाचरेत् ॥ ८७ ॥

अब योगके शीघ्र सिद्धिके अर्थ उपाय कहैहैं सुस्निग्ध कहैं सचिक्कन मधुर कहैं कोमल अशन जो बहुत सूक्ष्म ऐसा आहार करै मिष्टान्न तैलकरिकै रहित अर्थात् तैलको न होय ॥ ८४ ॥ घी दूध मधुयुक्त अर्थात् मेपरकरिकै सहित चावलको भात गव्य नैनू तथा अन्य पथ्य धातु-पोषनकरनेवारो पदार्थ रुचिपूर्वक योग्य तथा चूर्णवर्जित ताम्बूल ॥ ८५ ॥ वेदान्तश्रवण नित्य एकांतगृहसेवन ईश्वरनामसंकीर्तन इसप्रकार नेमसे रहै॥ ८६॥ धैर्य्य क्षमा दया शौच सुस्निग्ध अर्थात् अच्छा सूक्ष्म कहैं थोडासा वस्त्र धारणकरै इतने कहे जो नियम हैं सो सदैव काल योगी-नको आचारण करना योग्य है ॥ ८७ ॥

सद्यो भुक्तेऽपि नाभ्यासेः क्षुधितेऽपि न चाभ्यसेत् ॥ अनिलेऽर्कप्रवेशे च भोक्तव्यं सर्वसौख्यदम् ॥ ८८ ॥ वायौ प्रविष्टे शशिनि शयनं साधकोत्तमैः ॥ अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः ॥ ८९ ॥ सुयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ॥ तस्माद्युक्तेन कर्तव्यं साधकेन समासतः ॥ ९० ॥

॥ सद्य कहैं भोजन करिकै तुरंत तथा जब क्षुधित हो तब कदापि अभ्यास न करना चाहिये जिस

समय अनिल जो वायु अर्क जो दक्षिण श्वासामें प्रवेश करै तिससमय संपूर्ण सुखके देनेवारो भोजन करै ॥ ८८ ॥ जिससमय वायु शशि जो वामश्वासा तिसमें प्रविष्ट हो तिससमयही साधकको शयन करना चाहिये अयुक्त योगाभ्यास करिके संपूर्ण रोग उत्पन्न होवै हैं ॥ ८९ ॥ तथा युक्तिसेंयोगाभ्यास करनेसे संपूर्ण रोगोंका नाश होवैहै तस्मात्कहैं ताते साधककरिकै युक्तिसूं सम्यक्‌-प्रकार योग कर्त्तव्य है ॥ ९० ॥

इत्थं मासत्रयं कुर्यादनालस्यो दिनेदिने ॥ तस्य नाडी विशुद्धिस्स्याद्योगिनस्तत्त्व-दर्शिनः ॥ ९१ ॥

इसप्रकार पूर्वोक्त साधन रेचक पूरक कुंभक अनालस्य कहैं आलसरहित होकर तीन महीना अभ्यास करै तिस तत्वदर्शी योगीकी नाडी विशेषकरिकै शुद्धि होवैहै ॥ ९१ ॥

देहस्य कांतिर्जठरानलोन्नतिः सुशक्ति-बोधो मनसश्च योग्यता ॥ नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्म्मले ह्येतानि चिह्नानि ततो भवन्ति ॥ ९२ ॥

अब नाडीके शुद्धिताके लक्षण वर्णन करैहैं नाडी शुद्धिके अनंतर देहकी कांति जठराग्निकूं दीपनशक्ति कुंडली है ताको बोध उत्थान होवैहै मनसः योग्यता कहैं मनको आरंभविषे विश्वास प्राप्त होवैहै नादकी प्रगटता निर्म्मल नेत्र ततः कहैं नाडीशुद्धिते इतने चिह्न अवश्य होवैहैं ॥ ९२ ॥

उड्यानजालंधरमूलबंधैरनिद्रतायामुरगांगनायाम्॥ प्रत्यङ्मुखेन प्रविशन् सुषुम्नां गमागमौ मुंचति गंधवाहः ॥ ९३ ॥

उड्यान जालंधर मूलबंध मुद्रनकरिकै उरगांगना, जो सर्पिणी है सो निद्राछोडि पूरवको मुख करिकै सुषुम्ना जो ब्रह्मनाडी तामैं प्रवेश करि गमन आगमन जो वायुमार्ग सो परित्याग करि समाधिस्थ होवे हैं ॥ ९३ ॥

प्राणाभ्यासे क्रमेणैव घटिकात्रितयं यदा ॥ तदा स्यात्सकला सिद्धियोंगिनस्तत्वदर्शिनः ॥९४॥ सूक्ष्मदृष्टिः खेचरत्वं दिव्यकायस्तथैव च ॥ दूरश्रुतिः सत्यवाक्यं परकायप्रवेशनम् ॥ ९५ ॥ अदृश्यं कामचारित्वं भवंत्येतानि सर्वतः॥

भवेद्वीर्य्यवती गुप्ता गुरुवक्त्रसमुद्भवा ॥
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्य्याप्यतिदुः-
खदा ॥ ९६ ॥

क्रम करिकै प्राणायामके अभ्यासविषे जिसकाल प्राणवायु तीन घडी स्थिर होवै है तिसकालविषे संपूर्ण योगसिद्धि प्राप्त होवै है तत्त्वदर्शीपुरुषको ॥ ९४ ॥ सूक्ष्मदृष्टि खेचरत्व कहे आकाशविषे गमन दिव्यशरीर परशरीर विषे प्रवेश करना ॥९५॥ अदृश्य कहैं अंतर्द्धानत्व कामचारी कहैं इच्छापूर्वक विचारना इतनी संपूर्ण सिद्धियां होवैहैं गुरुके मुखकरिकै जो विद्या प्राप्त होवैहै वा गुप्त है सो विद्याही मोक्ष वा सिद्धिकी करनेवारी होवैहै नहीं तौ फलहीन निर्वीर्य अतिदुःखदेनेवारी होवैहै ॥ ९६ ॥

पवनाभ्यासने योगी घटावस्थां यदा व्रजेत् ॥
तदा संसारचक्रेऽस्मिन् यन्नास्ति तन्न
प्राप्नुयात् ॥ ९७ ॥

साधक पुरुष जिसकालविषे घटावस्थाको प्राप्तहोवैहै तिसकालमें इस संसारचक्रविषे ऐसी कोई वस्तु नहीं जो प्राप्त न हो ॥ ९७ ॥

प्राणापानौ नादबिंदू जीवात्मपरमात्मनौ ॥ एकत्र घटते यस्मात् तस्माद्वै घट उच्यते ॥ ९८ ॥

प्राण और अपान नादबिंदु जीवात्मा और परमात्मा यातैं एकस्थानकी घटना सो घटावस्थालक्षण होवैहै॥९८॥

याममात्रं यदा धतु शक्तिस्स्याद्वायुसाधने ॥ प्रत्याहारस्तदा प्रोक्तः साधकस्य महात्मनः ॥ ९९ ॥

एकप्रहरपर्य्यंत वायुसाधनविषे शक्ति होय जिसकालविषे तिससमयही महात्मा साधकपुरुषका प्रत्याहार होवै है सो वार्ता अन्यग्रंथमेंभी लिखा है–प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारउदाहृतः॥प्रत्याहारद्विषट्केन धारणा परिकीर्तिता ॥१॥भवेदीश्वरसंगत्यै ध्यानं द्वादश धारणा ध्यानद्वादशके यत्स्यात् समाधिस्साऽभिधीयते ॥ २ ॥ अर्थ–बारह प्राणायाम करिकै १ एकप्रत्याहार होवैहै और बारह प्रत्याहारसे एक धारणा और बारह धारणासैं ध्यान १ एक तथा बारह ध्यान होनेसे १समाधि होवै है तथा प्रत्याहार वर्णन करैं हैं ॥ ९९ ॥

॥ अथ प्रत्याहारवर्णनम् ॥

रूपं रस तथा स्पर्शं शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ सर्वमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहारेति योगवित् ॥ १०० ॥ सुगंधमथवा गंधं मेध्यामेध्यं तथैव च ॥ सर्वमात्मेति तन्मत्वा प्रत्याहारेति योगवित् ॥ १०१ ॥ रूपादिविषयाः पंच मनश्चैवाति चंचलम् ॥ सर्वमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहारेति योगवित् ॥ १०२ ॥ इंद्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः ॥ बलादाकर्षणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥ १०३ ॥

रूप रस स्पर्श अच्छा तथा बुरा सो सबको अपनी आत्मा मान योगवेत्ता प्रत्याहार करैं हैं॥१००॥ सुगंध तथा दुर्गंध पक्क तथा अपक्क सर्वको अपनी आत्मा मानि प्रत्याहार होवैहै अर्थात् योगवेत्ता प्रत्याहारकरैं हैं ॥ १०१ ॥ रूपआदिलेकरि पांच रूप रस गंध स्पर्श शब्द और चंचल मन सब अपनी अपनी आत्मा जानि योगवेत्ता प्रत्याहार

करै ॥ १०२ ॥ संपूर्ण इंद्री स्वभातेहीं विषयके विषे विच रतीहैं तिनको बलत आहरण करना अर्थात विषयतैं हटाना प्रत्याहार होवह ॥ १०३ ॥

तपःप्रवृद्धिः मनसः प्रसन्नता सुरप्रसादो-
पि हि दैन्यसंक्षयः॥ द्रुतं प्रवशश्च तथैव
संयमे जितेंद्रियस्येह किलोपजायते॥१०४॥

प्रत्याहारतैं जिसकालविषे इंद्रियजित होवैहै तिसकालविषेही संपूर्ण सिद्धि प्राप्त होवैहैं तपःप्रवृद्धिः कहिये तपकी वृद्धि होवैहै काहेतैं कि, इंद्रियजित पुरुष हीको तपकी सिद्धि होवैहै सो वार्ता अन्यस्मृतिमें कथन करी है यथा—मनसश्चेंद्रियाणां च निग्रहं परमं तपः ॥ तज्जायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते॥अर्थ—मन और इंद्रीनकी जो स्वस्वविषयोंसे निग्रह करना परम तप है और सोई सर्व सधर्मोंसे श्रेष्ठ धर्म है तथा मनसःप्रसन्नता कहिये मनकूं प्रसन्नता प्राप्त होवै है औ सुरप्रसाद अर्थात् संपूर्ण देवता उसके ऊपर प्रसादकहै प्रसन्न होवें हैं दैन्यसंक्षय जितेंद्रीपुरुषकी दीनताकाभी अभाव होवै है काहेतैं कि अजितेंद्रीपुरुषहो सर्वदा स्त्रीपुत्रादिकोंके पोषण करनेके निमित्त याचना करै है सो वार्ता भागवतमें कही है यथा-

जिह्वोपस्थादिकार्पण्याद्दहपालयते जनः॥यह पुरुष सर्वदा जिह्वा और उपस्थादि इंद्रियोंके विषयमें लोलुप भया श्वानकीनांई डोलै है तथा भर्तृहरिशतकमें भी कहा है ॥ यथा को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वीजनः ॥ बुद्धिमान् पुरुषकोईभी अपने एक उदरके वास्ते यांचा करै अर्थात् कोई नहीं 'द्रुतं प्रवेशश्चतथैव संयमे' इंद्रियोंके जय होनेसे-साधक पुरुषको योगका जो मुख्य साधन धारणाध्यानसमाधिरूप सो शीघ्र प्राप्त होवै है यह संपूर्णवार्त्ता जितेंद्री पुरुषको निश्चयं करिकै प्राप्त होवै है ॥ १०४ ॥

॥ अथधारणालक्षणम् ॥

भूमिरापस्तथा तेजो वायुराकाश वै क्रमात्॥
एतेषु पंचभूतेषु धारणा पंच कारयेत्॥१०५॥

पृथ्वी १ जल २ अग्नि ३ वायु ४ आकाश ५ इनपांच महाभूतोंमें पांचप्रकार धारणा होवै है सो करें इसप्रकार धारणाद्वारा पांच महाभूतोंकी जयहोनेसे योगी अमरभावकूं प्राप्त होवै है तथा स्वरूपवर्णन सो वार्ता शिवसंहितामें कथन करी है यथा—मेधावी पंचभूतानां धारणां यः समभ्यसेत ॥ ब्रह्मशतगतेनापि मृत्युस्तस्य न विद्यते॥१॥अर्थ जो मेधावी योगी पुरुष पूर्वोक्तप्रकारसे पांच महाभूतोंकी

धारणाका अभ्यास करता है सो पांचमहाभूतोंकी जय होनेतैं सौ ब्रह्माके चले जानेसेभी तिसकी मृत्यु नहीं होवै है ॥ १०५ ॥

॥ अथ ध्यानम् ॥

विष्णुं वैश्वानरं देवं भास्करं च तथा शिवम्॥
परमं पुरुषं दिव्यं सगुणं ध्यानमुच्यते १०६

विष्णुभगवांन् वैश्वानर जो अग्नि भास्कर जे सूर्य्य तथा शिवजी परम पुरुष इसको सगुण ध्यान वर्णन करैं हैं ॥ १०६ ॥

अतः परं परं ब्रह्म अनंतबलपौरुषम् ॥ सर्वा-
धारं जगद्रूपमव्यक्तं पुरुषोत्तमम् ॥ १०७ ॥
सर्वकारणकर्त्तारं निर्गुणं गुणसंयुतम् ॥ सोहं
ब्रह्मेति विज्ञाय निर्गुणं परिचक्षते ॥ १०८ ॥

अतःपरंकहिये सगुणध्यानतैं परे परब्रह्म अनंत है बलपौरुष जाको सर्वको आधार जगत्स्वरूप अव्ययनाम नाशरहित पुरुषोत्तम ॥१०७॥ संपूर्ण कारणके करनेवारे निर्गुण और गुणन करिकै संयुक्त सो ब्रह्म मैं हूं ऐसा जानि निर्गुण ध्यान कहैं हैं ॥ १०८ ॥

॥ अथ विष्णुध्यानम् ॥

हृत्पद्मेष्टदलोपेते नारायणमजं विभुम् ॥

चतुर्भुजमुदारागं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥
॥ १०९ ॥ नीलोत्पलदलाभासं शंखच-
क्रगदाभृतम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं शशि-
कोटिसमप्रभम् ॥ ११० ॥ मनसालोक्य
देवेशं सगुणं ध्यानमुच्यते ॥ प्रभाभिर्भा-
सयद्रूपं वासुदेवं सनातनम् ॥ १११ ॥

हृदयपद्म अष्टदल करिकै युक्त ता पद्मविषे नारायण साक्षात् अज कहैं जन्मकरिकैरहित विभु कहैं समर्थ चारिभुजान करिकै युक्त उदार है अंग जिनको कमल पत्रसदृश है ईक्षण नेत्र जिनके ॥१०९॥ नील जो कमल ताकेसी है शरीरकी शोभा जिनकी शंख चक्र गदाको धारण करनेवारे श्रीवत्स है वक्षसके विषे जिनके लक्ष्मीजीके ईश अर्थात् स्वामी, कोटिचंद्रमासमान प्रभा जाकी॥ ११०॥ देवतनके ईश जो विभु हैं तिनका मनकरिकै ध्यान करना सोई सगुणध्यान होवै है प्रभा जो कांति है ताकरिकै देदीप्यमान वासुदेव जो सनातन विष्णु हैं सोई परम ध्यान है ॥ १११ ॥

॥ अथाग्निध्यानम् ॥

हृत्सरोरुहमध्ये तु तथैवाष्टदले युते ॥
वैश्वानरं महावह्निं ज्वलंतं सर्वतोमुखम्

॥ ११२ ॥ प्रभाभिर्भासयद्रूपं पीताभं सर्वकारणम् ॥ सोहमात्मेति तं ज्ञात्वा ध्यानं योगविदो विदुः ॥ ११३ ॥

तैसेही हृदयकमलविषे वैश्वानर जो महावह्नि है सो कैसा है कि, सर्वतरफसे ज्वलरहाहै मुखारविंद जाको प्रभाकरिकै भासमान है स्वरूप जाको पीतवर्ण संपूर्ण जगत्का कारण अर्थात् उत्पत्तिस्थितिलयका कारण है सो अग्निरूप आत्मा जानकरि योगीजन अग्निध्यान कहैहैं ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

॥ अथ सूर्य्यध्यानम् ॥

अथवा मंडले तत्र भास्करस्य महात्मनः ॥ पद्मासनस्थितं देवं निर्मलं पावकोपमम् ॥ ११४ ॥ भासयंतं जगत्सर्वं सृष्टिस्थित्यंतकारणम् ॥ सोहमात्मेति तद्ध्यानं विद्वद्भिः परिकीर्तितम् ॥ ११५ ॥

अथवा ताही कमलविषे भास्कर जो श्रीसूर्य्यनारायण तिनका जो मंडल है सो देखै सो सूर्य्यनारायण कैसे हैं पद्मासनस्थ हैं निर्मल पावककी सदृश है तेज जिनको संपूर्ण जगत्को प्रकाश करनेहारे सृष्टिके स्थिति

उत्पत्ति तथा अंतके करनेवारे एवंभूत जो श्रीसूर्यनारायण सा आत्मा मैं हूं इसको सूर्य्यध्यान कहैं हैं ११४॥११५॥

॥ अथ शिवध्यानम् ॥

भ्रवोर्मध्ये शिवं ध्यायेद्भारूपं सर्वकारणम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशमुमया परिसेवितम् ॥११६॥ व्याघ्रचर्म्माम्बरधर शशीव प्रिय दर्शनम् ॥ पद्मासनास्थितं देवं चिंतयेच्च सदाविभुम् ॥ ११७ ॥

भ्रूके मध्यकमलविषे भारूप अर्थात् देदीप्यमान सर्व-जगत्का कारण शुद्ध जो स्फटिकमणि है ताके सदृश उमादेवीकरिकै सेवित॥११६॥व्याघ्रचर्म्माम्बरको धारण करै चंद्रमाकी नांई प्रियदर्शन पद्मासनकरिकै विराजमान एवंभूत जो देव ताहि चिंतमन करैं सो शिवध्यान अत्यंत उत्तम है ॥ ११७ ॥

भ्रध्यानादपरं नित्यं सोममंडलमध्यमम् ॥ स्वात्मानं मंडलाकारं चिंतयेच्च विच-क्षणः ॥ अहमेव परं ब्रह्म सच्चिदानंदल-क्षणम् ॥ ११८ ॥

भ्रूध्यानतैं परे अपर नित्यही चंद्रमंडलविषे अपनी जो आत्मा चंद्रमंडलाकार है सो विचक्षण चिंतमन करै वह परब्रह्म सच्चिदानंदलक्षण मैं हूं यही प्रकारध्यान है॥ ११८ ॥

एव ध्यानामृतं पीत्वा मृत्युं जयति योगवित् ॥ वत्सरान्मुक्त एवासौ जीवन्नपि न जीवति ॥ ११९ ॥

यहीप्रकार ध्यानरूप अमृत अर्थात् तिसध्यानसे पतित जो अमृत सो पानकरि मृत्युको जीतैहै एकसंवत्सरविषे मोक्ष होवैहै जीवितभी नहीं जीवता अर्थात् जीवितही मोक्षहै ॥ ११९ ॥

ध्यानान्यपि बहून्याहुर्योगिनो मुनिपुंगवाः ॥ मुख्यान्येतानि चैतेभ्यो नान्यच्च भुवि विद्यते ॥ १२०॥ एतद्ध्यानस्य माहात्म्यमृषिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥ शास्त्रेषु बहुधा प्रोक्तं परं तत्वं सुभाषितम् ॥ १२१ ॥

पूर्वकालविषे मुनिनमें श्रेष्ठ जो योगीजन हैं सो बहुतसे प्रकार ध्यान वर्णन करैं हैं तथापि सर्वोत्कृष्ट यही ध्यान मुख्य हैं इनतैं अन्य संसारमें कोई नही हैं ॥ १२० ॥

इतनेही ध्यानका माहात्म्य तत्त्ववेत्ता ऋषिनने शास्त्रनके विषे बहुतसे प्रकारकरि कहाहै सोई परमतत्त्व मैंने वर्णन कियाहै ॥ १२१ ॥

अथवा यादृशी बुद्धी रामे कृष्णे तथा शिवे॥कर्तव्यमिति तद्ध्यानं या मतिः सा गतिर्भवेत् ॥ १२२ ॥ यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं योजनान् बहून् ॥ तत्सर्व ध्यान-योगेन क्षणेनैव विनश्यति ॥ १२३ ॥

अथवा जिस प्रकार राम कृष्ण तथा शिव इनके विषे बुद्धि होय सोई ध्यान करना योग्य है काहेतें कि जिस प्रकार मति होवै है सोई फलीभूत होवै है ॥ १२२ ॥ जो कि पर्वतके समान बडा भारी विस्तीर्ण बहुत योजनपर्यंत पाप हो तोभी ध्यानयोगके एक क्षणमात्र साधन करिकै नाशकूं प्राप्त होवै है ॥ १२३ ॥

अथ बंधत्रयनिरूपणम् ॥

पद्मासनं समं बद्ध्वा स्थापयेच्चुबुकं हृदि ॥ जालंधरामिमं बंध मृत्युमातंगनाशनम् ॥ १२४ ॥ पादमूलेन वामेन योनिसंपी-

ड्यते बलात् ।। अपानमूर्द्ध्वमुत्थाप्य मूल-
बंधं प्रशस्यते ॥ १२५ ॥ उड्डीनं कुरुते
यस्मादविश्रांतं महाखगः ।। उड्यानं त-
स्मिं बंधं सर्वदुःखहर नृणाम् ॥ १२६ ॥

मुद्रा दशप्रकारके पूर्वाचार्य्योंने कथन करीहैं तिनमेंसे मुख्य २ वर्णन करौं हौं पद्मासन जो सब सुखके देवेवारी आसन है ताहि बांधिकरि ठोढी हृदयमें लगावै यह जालंधरबंध नाम मुद्रा होवै है सो कैसी है मृत्युरूप मातंग जो हाथी ताकूं नाश करनेहारी है ॥ १२४ ॥ वामपादकी एडी करिकै लिंग और गुदा दोनोंके मध्यमें जो योनिस्थान है ताहि बलकरिकै संपीडन करै अर्थात् दाबिकरि स्थितहो और अपान जो नीचेके गमन करि-वेवारो वायु ताहि ऊपर उठावै इस मुद्राको मूलबंध कहते हैं ॥ १२५ ॥ महाखग जो प्राण अपान वायु सो जातैं उड्डीन नाम है सो पश्चिममार्ग जो सुषुम्ना नाडी तामें किया जाय अन्यत्र कहीं विश्राम न पावै .संपूर्ण दुःखोंका नाश करनेहारो तिसको उड्यान बंध कहते हैं ॥ १२६ ॥

बंधत्रयेण पवने प्रयाति गगने लयम् ।। ततो
न जायते मृत्युर्जरा रोगादिकं तथा ॥ १२७ ॥

इस प्रकार जो यह बंधत्रय अर्थात् तीन बंध हैं तिन करिकै पवन गगन जो ब्रह्मरंध्र है ताविषे लयकूं प्राप्त होवैहै तातैं मृत्यु तथा बुढापा आदि रोग नहीं होवैं हैं ॥ १२७ ॥

॥ अथ खेचरीमुद्रालक्षणम् ॥

एकं सृष्टिमयं देवमेका मुद्रा च खेचरी ॥ कुंभकः केवलः श्रेष्ठः धन्यः पुण्यश्च मोक्षदः ॥ १२८ ॥ गुरुवाक्याल्लभते जिह्वा सद्य-स्त्रिपथगामिनीम् ॥ भ्रुवोरंतर्गता दृष्टिमुद्रा भवति खेचरी ॥ १२९ ॥

जिस प्रकार सृष्टिरूप एक परमेश्वर देव है तैसेही सब मुद्रनविषे एक खेचरी मुद्रा है तथा सब कुंभकनविषे एक केवलकुंभकमुद्रा श्रेष्ठ है सो धन्य तथा पुण्य तथा मोक्षकी देनेहारी है ॥ १२८ ॥ गुरुके वाक्यतैं प्राप्त होत जो जिह्वा त्रिपथ जो ब्रह्मरंध्र है ताके विषे शीघ्र गमन करनेहारी तथा भृकुटीके अंतर्गत जो दृष्टि सो खेचरी मुद्रा होवै हैं ॥ १२९ ॥

चंद्रात्सारः प्रस्रवति ह्यमृतं दिव्यरूपिणः ॥ खेचर्या मुद्रितं येन मृत्युं जयति लीलया

॥ १३० ॥ उर्द्धजिह्वः स्थिरो भूत्वा क्षणार्धमपि तिष्ठति ॥ विषैर्विमुच्यते सर्वै-र्व्याधिमृत्युजरादिभिः ॥१३१॥ न रोगो मरणं तस्य नैवालस्यं प्रजायेत ॥ क्षुधा मूर्च्छा तृषा नैव मुद्रां यो वेत्ति खेचरीम् १३२॥

चंद्रमातैं जो सार दिव्यरूप अमृतको प्रस्राव होवैहै सो जिस साधक पुरुषने खेचरीमुद्रा करिकै ढकदीनो अर्थात् पान करिलीनोहै जाने सो पुरुष लीलाकरिकै ही मृत्युको जीतवेवारो होवै है ॥ १३० ॥ ऊपर करी है जिह्वा जाने एवंभूत जो पुरुष यदि एक क्षणमात्रभी स्थित होवै तो संपूर्ण सर्प विच्छू आदिक तिनके विषकरिकै छूटै हैं जो पुरुष खेचरीमुद्रा भलीप्रकार जानै ताकूं न रोग न मृत्यु न आलस्य न क्षुधा पिपासा मूर्च्छा होवै है और कोई प्रकारकी बाधा नहीं होवै है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

वलीपलितवेपघ्नी मुद्रेयं खेचरी सदा ॥ न तस्य क्षरत बिंदुर्मुद्रां यो वेत्ति खेच-रीम् ॥ १३३ ॥

वलीपलित जो वृद्धापेकी देहका चर्म तथा कंपन ताकूं

यह खेचरी मुद्रा सदैव नाशकरनेवारी है जो पुरुष खेचरी मुद्राकू जानै ताको विंदु जो कामदेव सो कोई कालविषे पतित नहीं होवै है ॥ १२३ ॥

चालनाद्दोहनाच्चैव च्छेदनाच्च तथैवच ॥ यावत् स्पृशति भ्रूमध्ये खेचरी सिद्धितां तदा ॥१२४॥

प्रथम एक चोखा और महीन वस्त्र तासों जिह्वाकूं पकाडि कर चालन करै अर्थात् दोनों तरफाहिलावै पुनः गोके थनके सदृश दोहन करै पुनः छेदन करै फेरि तीक्ष्ण शस्त्रसूं जिह्वाके नीचेकी नसकूं छेदन करै सो जबतक जिह्वा वढिकरि वाहिर भृकुटीपर्य्यंत न पहुँचे तबतक अभ्यास करै जब पहुँच जाय तब खेचरी सिद्धि होय है कुछ वार्ता गुरुवाक्यसे समझलेना ॥१२४॥

जायते म्रियते लोके विंदुना नात्र कारणम्॥ तस्मादति प्रयत्नेन विंदुधारणमाचरेत् ॥ १२५ ॥ मरणं विंदुपतनं जीवनं विंदुधारणम्॥ शिवो विंदुरजः शक्तिः शाशसूर्यमयस्तथा ॥ उभयोर्मेलनं कार्य्यं स्वशरीरे प्रवेशयेत् ॥ १२६ ॥

जन्म मरण लोकविषे केवल विंदु करिकेही होवैहै और कुछभी कारण नहीं ताते सदैवकाल अतियत्नसे

विंदुको धारण करै ॥ १३५ ॥ विंदुका पतन होनाही जीवका मरण होवैहै तथा विंदुका धारण करनाही जीवन होवै है शिवरूप विंदु रजरूप शक्ति सो शशिसूर्य्यमय अर्थात् चंद्रमारूप विंदु सूर्य्यरूप रज होवै है सो दोनों कौ संमेलन करिकै अपने शरीरविषे प्रवेश करै सोही निश्चय करिकै मोक्षको देववारो होवैहै ॥ १३६ ॥

हकारः शंकरः प्रोक्तष्ठकारः शक्तिरीश्वरी ॥
उभायोर्मेलनं यस्मिन् हठयोगो निगद्यते १३७

तथा हठयोग लक्षण कथन करैं हैं, कि हकार करिकै शिव ठकार करिकै ईश्वरी पार्वती दोनोंनको संमेलन जाके विषे हो सोई हठयोग होवै है ॥ १३७ ॥

॥ अथ वज्रोलीमुद्रानिरूपणम् ॥

आदा रजः स्त्रियो योन्याः यत्नेनाविधिवत्सुधीः ॥ आकृष्य लिंगनालेन स्वशरीरे प्रवेशयेत् ॥ १३८ ॥ वाञ्चलति चेद्वीर्य्यमूर्द्धमाकृष्य रक्षयेत् ॥ क्षणमात्रं योनितो यो लिंगनालं निवारयेत् ॥ १३९ ॥ पुनश्च चालनं कुर्य्यात्तस्यां योन्यां शनैः शनैः ॥ १४० ॥

वज्रोलीमुद्रा साधन कहैहैं आदिके विषे विधिपूर्वक स्त्रीकी योनीतैं रजकूं लिंगनालकरिकैं आकृष्य नाम खैंचकरिकै अपने शरीरविषे प्रवेश करै॥१३८॥ कदाचित अपना वीर्य चलायमान होय तो ऊपरकूं खैंचकरि रक्षण करै अर्थात् गिरनै न पावै गिरा होवै तौ क्षणमात्र लिंग योनितैं वाहिर निकाललेय ॥ १३९ ॥ फिरि कुछ देर पीछे तिस योनिमें शनैः शनैः कहै धीरे धीरे चालन करै ॥ १४० ॥

गुरूपदेशतो योगी बलादाकृष्य तद्रजः ॥ उभयोर्मेलनं कृत्वा स्वशरीरे प्रवेशयेत् ॥ ॥१४१॥ अनेनैव विधानेन सिद्धो भवति भूतले ॥ वज्रोल्यभ्यासयोगोयं भोगयुक्तेपि मोक्षदः ॥ १४२ ॥ अयं तु शांकरो योगो धीराणां तत्वदर्शिनाम् ॥ गोपनीयः प्रयत्नेन न देयो यस्य कस्यचित् ॥ १४३ ॥

गुरुके उपदेशतैं योगी वलतैं तौन जो रज ताहि आकर्षण करै दोनों जो रजबिंदु हैं तिनको एकत्र करिकै अपने शरीरविषे प्रवेश करै ॥ १४१ ॥ यही विधान करिकै योगाभ्यासी भूतलविषे सिद्ध होवैहै वज्रोलीके अभ्यासकरिकै जो योग भोगयुक्त आपिनाम निश्चय मोक्षको देवैवारो

है ॥ १४२ ॥ यह योग साक्षात् शिवजीने कथनकर्योहै सो योग धीर तथा तत्वदर्शी पुरुषनके वास्ते देयहै नहीं तो विशेषकरिकै सामान्यमनुष्यनको नहीं देना चाहिये ॥ १४३ ॥

सहजोल्यमरोली च वज्रोली भेदतो भवेत्॥ योगशास्त्रानुसारेण उभेअपिनिगद्यते १४४

सहजोली अमरोली ये जो दोई मुद्रा ते वज्रोलीके भेद हैं योगशास्त्रके अनुसारतें उभेअपि कहैं दोऊ निश्चयकारिकै निगद्यते नाम वर्णन करे हैं ॥ १४४ ॥

॥ अथ सहजोलीमुद्रालक्षणम् ॥

दैवाच्चलति चेद्वीर्य्य संप्राप्तं योनिमंडले ॥ उभयोः शोषण येन स योगी सिद्धिभाजनम् ॥ १४५ ॥ सहजोलीति मुद्रेयं ज्ञातव्या योगिभिः सदा ॥ येन केन प्रकारेण विंदुधारणमाचरेत् ॥ १४६ ॥

जो कदाचित् स्थानतें वीर्य चलिजावै और स्त्रीकी योनिमंडलमें प्राप्त होजावै तौ लिंगकरिकै दोनोंको शोषणकरै जाकी क्रिया इसप्रकार है कि पूर्वमें सीसेकी शलाका १४ चौदह अंगुल बनावै वह नित्य लिंगमें चालनकरै जब

१२ बारह अंगुल प्रवेश होनेलगिजाय तब चांदीकी शलाका सच्छिद्र बनवावे ताको प्रवेशकरै और फूत्कारक· रिकै वायुसंचार करै फिर तिस लिंगनालकरिकै जल तथा दूध आकर्पण करै तदनंतर रजको और वीर्यको आकर्षण करै सो योगी संपूर्णसिद्धीनको पात्र है ॥ १४५ ॥ इसप्रकार इस मुद्राका नाम सहजोली है सो मुद्रा योगीजन जानैं हैं जिसाकिसीप्रकार करिकै बिंदु जो कामदेव तिसका धारण करना ॥ १४६ ॥

॥ अथ अमरोलीमुद्रालक्षणम् ॥

स्वमूत्रोत्सर्गसमये मुख्यां धारां परित्यजेत् ॥ बलादाकर्षयेन्मध्यां धाराममृतरूपिणीम् ॥ ॥ १४७ ॥ स्तोकं स्तोकं त्यजेत्पश्चादुपदिष्टगुरुशिक्षया ॥ एवं योगविधानेन बिंदुर्गच्छति मंडले ॥ १४८ ॥ षण्मासमभ्यसेन्नित्यं साधकः संयतेंद्रियः ॥ शतांगनाऽपि भोगेऽपि बिंदुस्तस्य न क्षुभ्यति ॥ १४९ ॥ बिंदुसिद्धिर्भवेत्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥ बहुना किं प्रलापेन ह्युपतिष्ठंति सिद्धयः ॥ १५० ॥ संसारिणां विमूढानां मायामोहितचेतसाम् ॥ बिंदुर्ददाति

सर्वेषां सुखदुःखमुदारधीः ॥ १५१ ॥ अयं तु शांकरो योगो योगिनां चात्मदर्शिनाम् ॥ रागग्रस्तमनुष्याणां न तु विषयशालिनाम् ॥ १५२ ॥

निजमूत्रोत्सर्गसयमें मुख्यधाराको त्याग करिदेवे फेरि वलकरिकै अमृतरूपिणी जो मध्यधारा ताको आकर्षण करै ॥ १४७ ॥ गुरूपदिष्ट शिक्षाकरिकै ताहि धीरे धीरे कुछ थोडी थोडी त्याग करै याप्रकार योगविधान करिकै विंदु जो है सो मंडलके विषे प्राप्त होवै है ॥१४८॥ इंद्रियनको जीतालियो है जाने ऐसे जो साधक सो नित्य ही क्रमपूर्वक प्रकार छै महीनापर्य्यंत अभ्यास करै तौ सौ स्त्रीके साथ भोगकरनेपरभी ताको विंदु क्षोभित नहीं होवै है ॥ १४९ ॥ यह जो जितश्वास योगी जाकी विंदुसिद्धि होयगई ताको बहुत प्रलाप कारिकै क्याहै संपूर्ण जो सिद्धि यह निश्चयकरिकै समीपमें स्थित होवैहैं ॥ १५० ॥ संसारी जे मनुष्य मायाकरिकै मोहित हैं चित्त जिनके तिनको उदारधी विंदु जो काम है सो सुखदुःखको प्राप्त करै है ॥ १५१ ॥ यह जो अम्रोलीयोग सो साक्षात् श्रीशिवजीने प्रकाशित कियोहै सो केवल आत्मदर्शी योगीजनोंके वास्ते सुखप्राप्तकरैहै रागकरिकै ग्रस्त जे मनुष्य तिनको नहीं केसे हैं वे मनुष्य अर्थात् विषययुक्त हैं ॥ १५२ ॥

अमरोलीत्वियं प्रोक्ता महासिद्धिप्रदायिका ॥ बिंदुधारणरक्षार्थं मुद्रा नैव च यादृशी॥१५३॥

यह महासिद्धिकी देवेवारी अमरोली मुद्रा कहीहै जाके सदृश अन्य मुद्रा बिंदुधारणकी रक्षाके अर्थ एवं नाम निश्चय करिकै नहीं है अर्थात् सर्वदा इसके समान कोई अन्य नहीं योग जप तप सबका मूल यह है ॥ १५३ ॥

गुह्याद्गुह्यतमो लोके न भूतो न भविष्यति॥ ईशत्वं यत्प्रसादेन दुर्लभं प्राप्यते भुवि ॥ १५४ ॥

इस बिंदुरक्षारूप योगके समान अन्य कोई जप तप भक्ति योग नहीं संसारमें यह योग गुप्तसे गुप्त है, अर्थात हरेकको देना उचित नहीं इस बिंदुरक्षारूप योगप्रसादसे इस संसारविषे जो दुर्लभ ईशत्व है सो प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं ॥ १५४ ॥

॥ अथ शक्तिचालनीमुद्रालक्षणम् ॥

अपानवायुमाकृष्य चालयेत्कुंडलीं दृढाम् ॥निद्रां विहाय भुजगीं स्वयमूर्द्धं व्रजेत्खलु ॥ १५५ ॥ गुरूपदेशतो नित्यं शक्तिचालनमाचरेत् ॥ आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य सिद्धो भवति भूतले ॥१५६॥ षण्मासम-

भ्यसेद्योगी प्रत्यहं गुरुशिक्षया ॥ बहुना किं प्रलापेन मुक्तो भवति बंधनात् ॥ १५७ ॥

अपानवायु जो गुदाद्वारा नीचेगमन करैहै ताहि ऊपरको खेंचिकारि दृढ जो कंडली अर्थात् सात लपेटे देकारि पूर्ण निद्राके विषे जो होरही ताहि चालयेत् अर्थात् चलावै सो निद्रा छोडि आपही ऊर्द्ध जो ब्रह्मरंध्रस्थान तामें निश्चयकरि गमन करैहै ॥१५५॥ जो पुरुष गुरुके उपदेशतैं नित्यही शक्तिचालन मुद्राभ्यास करैहै ता पुरुषकी आयु वृद्धि निश्चयकरिकै होती है और संपूर्ण अणिमादिक सिद्धियां प्राप्त होकर पृथ्वीविषे सिद्धरूपहोता है ॥१५६॥ जो पुरुष इस मुद्राअभ्यासको छै महीना गुरुकी शिक्षापूर्वक निशिदिन करैहै ताकूं बहुत प्रलाप करनेसे क्या सर्व सिद्धि प्राप्त हो संसाररूप बंधनसे छूटिजावैहै ॥ १५७ ॥

॥ अथ विपरीतकरणीमुद्रालक्षणम् ॥

अधःशिरश्चोर्द्धपादमभ्यसेच्च दिनेदिने ॥ मुद्रेयं विपरीताख्या जठराग्निविवर्द्धनी ॥ १५८ ॥ नित्यमभ्यासयुक्तस्यात्याहारो बहुलोच्यते ॥ सूक्ष्माहारो यदि भवेदग्निर्दहति निश्चितम् ॥१५९॥तस्माद-

तिप्रयत्नेन साध्यते योगिना सदा ॥ व-
लितं पलितं चैवषण्मासोर्द्धं न दृश्यते॥१६०॥

अधः कहें नीचेकूं शिर ऊंचेकूं पांव करै अर्थात् पृथ्वी- में मस्तक रखकरि अंतरिक्षमें पांव करै इसतरह दिन प्रति अभ्यास करै याको विपरीतकरणीमुद्रा नाम है सो मुद्रा जठराग्निकूं अत्यंत वृद्धि करैहै ॥ १५८ ॥ जो पुरुष या मुद्राको नित्य अभ्यास करै तिस साधकपुरुषकूं बहुत आहार करना योग्य है जो कदाचित् आहार कम करै तौ जठराग्नि शरीरकूं शीघ्रही भस्म करैगा ॥ १५९ ॥ तातैं अतिप्रयत्नकरिकै यह मुद्रा योगीकरिकै साधनीय होवैहै जो इसमुद्राका अभ्यास नित्य करै ताके वली प- लित चर्म केश छे महीनामें नाश होवैं हैं अर्थात् तरुणकेसे होवैंहैं तथा जराका अभाव होवहै ॥ १६० ॥

याममात्रं यदा कर्त्तुं समर्थः स्याद्दिनेदिने॥
तदैव कुरुते योगी कालस्य मुखवंचनम् ॥
॥१६१ ॥ गुरुप्रसादाल्लभते मुद्रेयं पाप-
नाशनी ॥ गोपनीया विशेषेण न देया
यस्य कस्यचित् ॥ १६२ ॥

अभ्यासके साधन जो नित्यप्राति एकप्रहर करिवे लगिजाय सो तेहीसमयसे कालके मुखकी वंचना करैहै ॥ १६१ ॥ यह मुद्रा केवल गुरुकी प्रसन्नतातैं सिद्ध होवैहै

यह मुद्रा पापको नाश करिवेवारी है यह विशेषकरि गोपनीय है अर्थात् अनधिकारीकूं देना योग्य नहीं ॥१६२॥

॥ अथ समाधिनिरूपणम् ॥

ध्येयस्वरूपोपगतो यदा सुधीर्विस्मृत्य चात्मानमथावतिष्ठते ॥ योगी विलूनाखिलकर्म्मबंधनैर्योगस्य तच्चाष्टकमंगमीरितम् ॥ १६३ ॥

जिसकालविषे सुधी कहैं सुंदरबुद्धिमान जो साधक पुरुष है ध्येयवस्तु जो परमात्मा है तास्वरूपकूं प्राप्त होवैहै अपनी जो देह तथा आत्माका पृथक्‌भाव ताहि भूलिकरि स्थित होवैहै सो योगी कैसो है कि,संपूर्ण जन्मांतरके संचित तथा वर्तमान आगामि तिनकरिकै छूटि जावैहै सो योगका अष्टम अंग जो समाधि सो होवैहै ॥ १६३ ॥

सरित्पतौ यथा चापः कर्पूरमनिले यथा॥ सलिले लवणं यद्वत्समाधिः प्राणसंयमात्॥१६४॥ घृते घृतं यथा क्षिप्तं वह्नौ वह्निरिवार्पितः॥ तथा भवति चैकत्वं जीवात्मपरमात्मनोः॥१६५॥अच्छेद्यः सर्वशस्त्राणामवध्यः सर्वदेहिनाम् ॥ अशक्यो यक्षगंधर्वैर्योगी मुक्तस्समाधिना ॥१६६॥

जिसप्रकार सरित्पति जो समुद्र ताविषे आप जो जल और अग्निमें कपूर जलमें लवण एकरूप होवैंहैं तैसेही प्राणसंयम अर्थात् प्राणवायुके संयम कहैं निरोध करनेसे समाधि होवैहै ॥ १६४ ॥ जिसतरह घीके विषे घी अग्निके विषे अग्नि छोडै तेही प्रकार जीवात्मा और परमात्मा एकताकूं प्राप्त होवैहै ॥ १६५ ॥ समाधिकरिके मुक्तरूप जो योगी सो संपूर्ण शस्त्र जे हथियार तिनतैं अच्छेद्य अर्थात् छेदो नहीं जावैहै और सर्वदेही जो जीवात्मा हैं तिनकरिकै अवध्य है तथा यक्ष गंधर्वादिक जो हैं तिनकरिकै अशक्य अर्थात् पकडिनहींसकै भावार्थ यह है कि सर्व बंधनतैं मुक्त है ॥ १६६ ॥

भित्त्वा सर्वाणि पद्मानि कुंडली वायुना हता ॥ सुखतो ब्रह्मविवर गत्वा सुखमवाप्नयात् ॥ १६७ ॥

जिसकालमें वायु जो उड्यान जालंधर मूलबंध मुद्रा इनके करनेसे वायुकरिकै पीडित जो कुंडली सो संपूर्ण पद्म तिनही भेदकरि सुखपूर्वक ब्रह्मरंध्र जो है ताकूं प्राप्त होकरि सुखको अर्थात् ब्रह्मानंदको प्राप्त होवैहै ॥ १६७ ॥

भक्त्यात्मका शुभा ह्येका पुनर्ज्ञानात्मकापरा ॥ ध्यानात्मका तृतीया च समाधिर्वर्ण्यतेबुधैः ॥ १६८ ॥

अव समाधिभेद वर्णन करैंहैं बुद्धिमान् करिके समाधि तीन प्रकार वर्णन करीजावैहै एक शुभ स्वरूपकहै कल्पानुरूपा भक्त्यात्मका अर्थात् सभक्ता भक्तिकरिकै युक्त उपासना ध्यानपूर्वक। तथा अपरा कहैं दूसरी ज्ञानात्मका अर्थात् निर्गुणध्यान पूर्वक । तृतीया कहैं तीसरी प्राणायामकरिकै सो ध्यानात्मका है ॥ १६८ ॥

संनियम्येंद्रियग्रामं ध्यायेद्विष्णुं सनातनम् ॥ धातारं चापि विस्मृत्य समाधिस्साभिधीयते ॥ १६९ ॥

समाधि प्राणायामद्वारा तथा केवल प्रेमपूर्वक इंद्रियनको रोकिकारि सनातन जो विष्णुपरमात्मा है तिनहि ध्यायेत् नाम ध्यानकरे सो जा काल ध्यान करते करते धातार जो ईश्वर है ताहि विस्मरण होजावै सा कहैं सो समाधिलक्षण होवैहै ॥ १६९॥

यदि देहं पृथक्कृत्य चित्तं विश्रम्य तिष्ठति॥ तदैव तु सुखी शांतो समाधिं सोऽपि गच्छति ॥ १७० ॥

पूर्वं भक्तिसमाधि निरूपणकारि ज्ञानसमाधि वर्णन करहु जा कालमें देहकूं पृथक्मानिकारि चित्तमें विश्राम पाकारि स्थित हो ताकालविषे सुखी और शांत समाधिपदकुं चेहुँहै ॥ १७० ॥

नाहं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी न जितेंद्रियः ॥ असंगो निर्विकारोऽहं विश्वसाक्षी सदा विभुः ॥ १७१ ॥ नाह कर्त्ता न वा भोक्ता स्वप्रकाशो निरंजनः ॥ अयमेव न मे बंधः समाधिमनुगच्छति ॥ १७२ ॥

विप्रकूं आदि लेकरि कोई वर्ण नहीं हुं न कोई आश्रमी अर्थात् ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी तथा जितेंद्री अजितेंद्री नहीं हुं, असंग निर्विकार विश्वसाक्षी सर्व ऐश्वर्य्यमान मैं हूं ॥ १७१ ॥ न भोक्ता न कर्त्ता स्वप्रकाश निरंजन मैं ही हूं जो वंधमोक्ष मेरे कोई वंधन नहीं है सो समाधिकूं प्राप्त होवे है ॥ १७२ ॥

अहो निरंजनः शांतो बोधोह प्रकृतेः परः ॥ इति मत्वा यदा ज्ञानी समाधिमनुगच्छाति ॥ १७३ ॥ बद्धो बद्धाभिमानी यो मुक्तो मुक्ताभिमान्यपि ॥ बहुन च किमुक्तेन स्वमतिं चानुगच्छाति ॥ १७४ ॥

अहो निरंजन शांत प्रकृतितें परे बोधरूप मैं ही हौं इसप्रकार मानिकरि ज्ञानी शीघ्रही समाधिकूं प्राप्त होवे है ॥ १७३ ॥ जो पुरुष अपनी इच्छाकरिकै बद्ध है सो बद्ध

होवैहै जो अपनी इच्छाके अभिमानतैं मुक्त है सो मुक्त है वहुत कथनकरनेसे क्या है यह जीव अपने मतके अनुसार गमन करैहै ॥ १७४ ॥

मुमुक्षुरिह संसारे बुभुक्षुरपि दृश्यते ॥ मोक्षभोगनिराकांक्षी विरलो हि महाशयः ॥ १७५ ॥

इस संसारमें मोक्षकी तथा भोगकी इच्छावाले जन वहुत हैं तथा मोक्ष वा भोगकी इच्छा रहित कोई महाशय विरलाही होवैहै ॥ १७५ ॥

स्खलत्यसौ नैव यदा कथंचिदभ्यासतो धारणध्यानतुर्यैः ॥ तदैव तज्ज्ञानि फलानि संयमेऽविरोधमुख्याँल्लभते जितासुः ॥ १७६ ॥ समाधिर्धारणा ध्यानं त्रयमेकत्र संयमः ॥ जितश्वासस्य युक्तस्य ह्युपतिष्ठंति सिद्धयः ॥ १७७ ॥

आसन प्राणायाम मुद्रादिकनकरिकै जीतलियो है प्राणवायु जाने सो जाकालकेविषे धारणा ध्यान समाधिके अभ्यासतैं कोई समय स्खलित नहीं होवै है तेही समय संयमके जो जो फल आनंदके देववारे सो संपूर्ण आनिकर प्राप्त होवैहैं ॥ १७६ ॥ संयमलक्षण कहैहैं जिस

कालमें धारणा ध्यान समाधि एकत्र अर्थात् एकपदार्थमें आरूढ होवैं हैं सोई संयमलक्षण होवैहै अर्थात् धारणा ध्यान समाधि इन तीनोंका एक होना संयम है सो वार्त्ता योगसूत्रमें कथन करी है, यथा "त्रयमेकत्र संयमः तथा त्रयमंतरंगं पूर्वेभ्यः" जितश्वासपुरुषकूं संपूर्ण सिद्धि प्राप्त होतीहैं ॥ १७७ ॥

जितेंद्रियमनुष्यस्य सिद्धिः प्राप्नोति निश्चितम् ॥ नैवाजितेंद्रियस्यैव वेदवादरतस्य च ॥ १७८ ॥

जितेंद्री मनुष्य सिद्धिकूं निश्चय पहुँचेहै तथा अजितेंद्री विद्वानभी होय तौ भी नहीं पहुँचे ॥ १७८ ॥

अतीतानागतं ज्ञानं परिणामश्च संयमात् ॥ कूर्मनाड्यां भवेत् स्थैर्य्यं मूर्द्धनि सिद्धिदर्शनम् ॥ १७९ ॥

अतीत जो काल पूर्वमें होचुका अनागत जो जो आनेवाला है इनविषे संयमकरनेसे सर्वकर्म्मोंका ज्ञान होवैहै कि मैं कौन था क्या करता रहा और आगे क्या होगा कूर्मरूपा जो नाडी ताविषे संयमकरनेसे स्थिरता प्राप्त होवैहै अर्थात् कोईभी हिला नहींसक्ता मूर्द्धाकेविषे संयमकरनेसे संपूर्ण सिद्धीनके दर्शन तथा वार्तालाभ होवैहै ॥ १७९ ॥

ज्ञानं समस्तजगतां संयमे सूर्यमंडले ॥
रेचकाभ्यासयुक्तेन प्रविशत्यपरां पुरीम्
॥ १८० ॥ समानवाय्वा ज्वलनमुदाने
गमने गतिः ॥ लावण्यं च बलं रूपं
यस्मिंस्तस्मिन् सुसंयमे ॥ १८१ ॥

सूर्य्यके विषे संयमकरनेसे संपूर्ण जगत् तथा तीनों लोकका ज्ञान होवैहै रेचक प्राणायामके अभ्यास संयमकरनेपर परकायप्रवेश अर्थात् पराई देहमें प्रवेश होनेकी शक्ति होवैहै ॥ १८० ॥ समाननामकरिकै जो वायु तामें संयमकरनेसे ज्वलन अर्थात् जलतेहुएकी नाई प्रतीति होवै इच्छा हो तौ जलभी जावै इसीको योगाग्नि कहतेहैं उदानवायुकेविषे संयमकरनेसे गमन विषे गति अर्थात् जलमें न डूबै कंटक न लगै और आकाशमार्गमें भी गमन की शक्ति हो जिस जिस पदार्थके विषे संयम करैहै सोई पदार्थरूप स्वयं आप होवैहै कामदेवविषे रूप तथा श्री हनुमान भीमादिकनविषे बल संपूर्ण सोई रूप प्राप्त होवैहै सो वार्ता अमृतबिंदु उपनिषत्‌विषे कथन करी है ॥१८१॥

इति श्रीयोगमार्गप्रकाशिकायां हठयोगवर्णनं नाम
तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

॥ अथ राजयोगवर्णनम् ॥

मंत्रो लयो हठोपायो राजयोगाय कल्पते ॥ यो यं योगं विजानाति ह्युत्तमः सर्वयोगिनाम् ॥ १ ॥ वज्रासने स्थितो योगी मुद्रां विधाय शांभवीम् ॥ शृणुयाद्दक्षिणे श्रोत्रे सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्वनिम् ॥ २ ॥

इसके अनंतर राजयोग वर्णन करैंहैं कि, संपूर्ण मंत्रयोग, लययोग, हठयोग इनके जो उपाय अर्थात् साधन हैं सो केवल राजयोगके अर्थ होवैंहैं जो योगी राजयोगकूं अच्छी तरहसे जानै सो संपूर्ण योगिनके विषे उत्तम है ॥ १ ॥ वज्रासन जो सिद्धासन ताहि बांधिकरि शांभवीमुद्रा जो खेचरीमुद्रा ताहि धारणकरिकै दक्षिणश्रोत्र जो दक्षिण कर्ण तामें सूक्ष्मतें सूक्ष्म ध्वनि होवैहै ताहि श्रवण करै ॥२॥

आरंभा प्रथमावस्था घटाऽवस्था द्वितीयिका ॥ तृतीया परिचर्या च निष्पत्तिश्च चतुर्थिका ॥ ३ ॥ चतुष्टयं सर्वयोगे महासिद्धिप्रदायकम् ॥ कथितुं कस्समर्थः स्यान्महासिद्धैश्च सेवितम् ॥ ४ ॥

तहां प्रथम आरंभा १ दूसरी घटा २ तीसरी परिचर्या ३ चतुर्थ निष्पत्ति ४ यह जो अवस्थाचतुष्टय है सो महान्

सिद्धि जो अणिमा महिमाकूं आदिलेकरि तिनकूं देवेवारोहै ताके वर्णन करिवेम कौन समर्थ है सो महासिद्ध जो कपिलाचार्य्यकूं आदिलेकरि श्रीशिवजी तथा मच्छेंद्रनाथादिक तिनने सेवन कऱ्यो है ॥ ४ ॥

ब्रह्मग्रंथेर्यदा भेदोऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः॥ दिव्यदेहश्च तेजस्वी ह्यानंदं परमं व्रजेत् ॥५॥ संपूर्णहृदयः शून्यः आरंभा सा प्रकीर्तिता ॥ द्वितीयघटवन्नादे ज्ञानी देवसमो भवेत् ॥ ६ ॥ विष्णुग्रंथिर्यदा भेदे परमानंदसूचके ॥ ७ ॥

जिसकालविषे ब्रह्मग्रंथिका भेदन तथा अनाहत जो ध्वनि है सो जिस यागीकरिकै सुनीजाय सो दिव्यदेह तथा तेजवान् परम आनंदको प्राप्त होवैहै ॥ ५ ॥ संपूर्ण हृदय आनंदकरिकै शून्य होवै जाविषे सो आरंभ अवस्था कहावैहै ॥ ६ ॥ जा कालमें विष्णुग्रंथिको भेदन होवैहै तासमय घटकेसा शब्द होवैहै ता नाद श्रवण करेते ज्ञानी देवता समान होवैहै सो नाद परम आनंदकूं देवेवारो है ॥ ७ ॥

रुद्रग्रंथिं यदा भित्त्वा सुखाद्विशति मारुतः ॥ सर्वदुःखजराव्याधिक्षुधानिद्रा विनश्यति ॥८॥ निष्पत्तौ वेणुसदृशो नादश्च

परमो महान्॥यदा संजायते तत्र योगी-
श्वरसमस्तदा ॥ ९ ॥ सृष्टिसंहारकर्त्तासौ
सत्यं सत्यं न संशयः ॥राजयोगप्रभावेण
न किंचिद्दुर्ल्लभं जगत् ॥ १० ॥

जिससमय रुद्रग्रंथि जो है ताहि भेदनकारि वायु सुखपूर्वक ब्रह्मरंध्रको प्राप्तहोवै तासमय संपूर्ण दुःख राग द्वेपादिकन करिकै उत्पत्ति तथा जरा जो बुढापा तथा व्याधि और क्षुधा निद्रा इत्यादि इन सबको नाशभाव प्राप्त होवै है ॥ ८ ॥ चौथे तहां निष्पत्ति अवस्थाविषे वेणुसदृश जो परममहान् नाद सो प्राप्त हो वाही समय योगी ईश्वरके सदृश अर्थात् रचना करनेमें तथा लयकरनेमें समर्थ हो ॥ ९॥ सृष्टिके संहार तथा उत्पन्न करिवेमें अर्थात् रचिवेमें कोई योगी समर्थ होवैहै यह सत्य है सत्य है यामें कोई संशय नहीं राजयोगके प्रभावकरिकै संसारमें किंचित् मात्र दुल्लभ नहीं अर्थात् कोई पदार्थकी प्राप्ति दुल्लभ नहीं आपहीतैं संपूर्ण पदार्थ सिद्धिताको प्राप्त हों ॥ १० ॥

राजयोगस्य माहात्म्यं को वा शक्नोति
वर्णितुम् ॥ योगस्यास्य च कर्त्तारो विज्ञे-
यास्ते महेश्वराः ॥ ११ ॥

इस राजयोगका माहत्म्य कोई कहने नहीं सकै जो योगाभ्यासी इसको जानते तथा करते वे महेश्वर अर्थात् ब्रह्मा विष्णु महेशके समान समझना चाहिये ॥ ११ ॥

एवं नानाविधा मार्गा राजयोगपथा-
यते ॥ क्रियते राजयोगेन कालस्य-
मुखवंचनम् ॥ १२ ॥ राजयोगमजानंतः
केवलं हठधर्म्मिणः ॥ तेषामभ्यासिनां
मन्ये श्रमो हि केवलं फलम् ॥ १३ ॥

नानाप्रकारके जे संपूर्ण मार्ग अर्थात् मोक्षके मार्ग ते सब राजयोगके अर्थ होवैहैं काल जो है ताके मुखकी वंचना केवल राजयोगही करिकै होवैहै ॥ १२ ॥ जो पुरुष राजयोग जो केवल निश्चयताहि नहीं जानते केवल जप-तपादिक हठधर्म्मीं हैं तिन अभ्यासीनकूं केवल श्रमही फल प्राप्तहोगा ॥ १३ ॥

केचिद्दानं प्रशंसंति केचिद्धर्म्मं तथापरे ॥
केचिद्गृहस्थकर्म्माणि केचिद्वैराग्यमुत्त-
मम् ॥ १४ ॥ अग्निहोत्रादिकं केचित् तपः
शौचं क्षमार्ज्जवम् ॥ एवं वदंति मुनयो
मुपायांस्तु विमुक्तये ॥ १५ ॥

कोई कोई दानकी प्रशंसा करते तैसेही कोई कर्म्मकी प्रशंसा करतेहैं, कोई गृहस्थ कर्म्मकूं अच्छा मानतेहैं कोई वैराग्यको उत्तम कहतेहैं ॥ १४ ॥ कोई अग्निहोत्रादिक

जे यज्ञादिशुभकर्म्मोंको तथा कोई तप शौच क्षमा आर्जवकूं अच्छा कहतेहैं येही प्रकार मुनिजनोंने मोक्षके अर्थ बहुत उपाय कहेहैं ॥ १५ ॥

एवं विवादकर्तॄणां मतं वक्तुं न शक्यते ॥
इदमेकं मया प्रोक्तं योगशास्त्रं स्वभावतः ॥ १६ ॥ भक्तियोगोऽथवा ज्ञानं तपः
शौचादिकं तथा॥न ज्ञायतेऽस्मिन् संसारे
पृथगष्टांगयोगता ॥ १७ ॥

तथापि इनमें जो वादविवादके करवेवारे हैं तिनके मत वर्णन करिवेकूं हम समर्थ नहीं हम तो अपने अनुभवतें एक योगशास्त्रही परम मत मानतेहैं सो वर्णन करो हौं १६॥ भक्तियोग ज्ञान तप शौचादिक जो हैं सो इस संसारके विषे कोई अष्टांगयोगतें वाहिर नहीं सो वार्ता वर्णनकरेहैं कि भगवानकी जो नवधा भक्ति है यथा "श्रीमद्भागवते—श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥ अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥१॥" अर्थ—कथाश्रवणकरना १नामसंकीर्त्तन २ स्मरण ३ चरणसेवा ४ पूजन करना ५ वंदना करना ६ दास्यपन ७ सख्यभाव ८ आत्मनिवेदन ९ अर्थात् आत्मसमर्पणकरना सो इस नियमके अंगविषे अंतर्भाव है तथा समाधी योगसूत्र पतंजलिने कहाहै "ईश्वरप्रणिधानाद्वा" कि ईश्वरके प्रेमपूर्वक प्रणिधान अर्थात् पूजन सो

समाधि होवैहै तथा नारायणतीर्थने "प्रेमभक्तियोगस्तु ईश्वरचरणारविंदयोः प्रेमप्रवाहो अविच्छन्नस्समाधिः" अर्थ ईश्वरके चरणारविंदविषे प्रेमप्रवाह जो है सो समाधि तव प्रेमभक्तियोग होवैहै, तातैंसर्वकाल समाधि तीनप्रकार वर्णन करिचुकेहैं ज्ञानसमाधि १ भक्तिसमाधि २ तथा कर्म्मसमाधि ३ याहीको ध्यानसमाधि वर्णनकरैहैं अर्थात् योगसे समाधिहोवैहै विना इसके अन्यप्रकार नहीं ॥१७॥

चित्तस्थैर्ये स्थिरो वायुस्ततो बिंदुः स्थिरो भवेत् ॥ जायते सहजावस्था यमिनां मोक्षदायिनी ॥ १८ ॥ यावन्न गच्छेदनिलस्तदात्मकं तावन्न बिंदुः स्थिरतां प्रपद्यते॥ तावन्न ध्यानं न च रागसंक्षयस्तावन्न ज्ञानं लभते विरागवान् ॥ १९ ॥

जिसकालमें चित्त स्थिर होवैहै तव चित्तके स्थिर होनेसे वायुभी स्थिर होवैहै वायु स्थिर होनेसे सहजावस्था अर्थात् समाधि जो है सो प्राप्त होवैहै सो समाधि योगीजनोंको मोक्षकी देनेवारीहै ॥१८॥ जवतक अनिल जो वायु सो ब्रह्मरंध्र जो है ताहिको प्राप्त न हो तवतक कोई उपायसे बिंदु स्थिरताकूं प्राप्त नहीं होता जवतक बिंदु स्थिर नहीं होता तवतक रागध्यान तथा राग जो शीतोष्णादि-

कोंकी बाधा तिसका संक्षय नहीं होता और जबतक शीतोष्णादिकोंकी बाधा रहती तबतक ज्ञानकी प्राप्ति नहीं यद्यपि वैराग्यवानभी हो तौभी क्या ॥ १९ ॥

नास्ति योगसमा विद्या न नादसदृशो लयः
मनोन्मनी ह्यवस्थासु यथा मुद्रासु शांभवी ॥ २० ॥

योगविद्याके समान कोई विद्या इस संसारमें नहीं नादके सदृश कोई लय नहीं अवस्थामें मनोन्मनीके समान कोई अवस्था नहीं तैसेही शांभवीमुद्राके समान कोई मुद्रा नहीं ॥ २० ॥

योगाऽनुसन्धानसमाधिपात्रं योगेश्वराणां हृदि वर्त्तमानम्॥ आनंदपूर्णं वचसा ह्यगम्यं जानाति तत् श्रीगुरुनाथ एकः ॥ २१ ॥

योगका जो अनुसंधानरूपी समाधिका पात्र है सो योगेश्वर जो पूर्ण योग कर्त्ता हैं तिनके हृदयमें वर्तमान कहे प्राप्त हो रहा है आनंद करिके पूर्ण हि कहें निश्चयकरि वाणीसे अगम्य उसको केवल एक गुरुनाथही जानते हैं दोहा—अज्ञानीको जगलटो, ज्ञानवानको ऐन । अंधेको जिमि अंधगृह दृगवारेको चैन ॥ २१ ॥

रूपलावण्यसंपन्ना यथा स्त्री पुरुषं विना ॥
तथा योगेन रहितो ब्रह्मज्ञानरतोऽपि वा ॥ २२ ॥

जैसे रूप और लावण्यता करिकै युक्त जो स्त्री सो पुरुषविना व्यर्थ होती है तैसेही योगाभ्यास करिकै रहित मनुष्य ब्रह्मज्ञानीभी होय तौभी व्यर्थ होवैहै ॥ २२ ॥

इति श्रीयोगमार्गप्रकाशिकायां राजयोग वर्णनं नाम चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

॥ अथ प्राणायामक्रम निरूप्यते ॥

अथाभ्यासक्रमं वक्ष्ये योगिनां सिद्धिदायकम् ॥ प्रातःकाले समुत्थाय प्रणम्य स्वगुरून् सुधीः ॥ १ ॥ विधिवच्छौचादिकं कृत्वा एकांते च मठं विशेत् ॥ सूक्ष्मरंध्रे मठे रम्ये प्रतिष्ठाप्यासनं मृदु ॥ २ ॥ गुरुं संस्मृत्य हृदये विघ्नेशं स्वेष्टदेवताम् ॥ ततस्संकल्पकं कृत्वा प्राणायामन्ततोऽभ्यसेत् ॥ ३ ॥

अव प्राणायामका क्रम निरूपण करैं हैं जाके अनंतर अर्थात् चारि प्रकार योगके अनंतर प्राणायाम अभ्यासक्रम जो है सो कहां हौं सो क्रम योगीनकूं सिद्धिदायक है कि, प्रातःकाल अरुणोदयसे लेकरि सूर्योदयपर्य्यंत होवै है तामैं उठिकरि अपने गुरु जो आचार्य्य और माहात्मा तिनहि प्रणाम करिकै ॥ १ ॥ विधिपूर्वक शौचादिक जो क्रिया तादि करिकै एकांतस्थानविषे जो मठ तामैं प्रवेश

करे सो मठ सूक्ष्मरंध्र अर्थात् छोटासा द्वारहो और रमणीक हो तामें मृदुकहें कोमल आसन बिछावे ॥ २ ॥ और गुरु जो है तथा गणेश देव जो है तथा इष्टदेव जो हैं तिनही हृदय विषे स्मरण करिके ताके अनंतर संकल्प उच्चारण करिके प्राणायाम अभ्यास करे ॥ ३ ॥

मुद्रां च विपरीताख्यां कुंभकात्पूर्वमभ्यसेत् ॥ कुंभका दशकर्तव्याः पंच वृद्धा दिनेदिने ॥ ४ ॥

और जो विपरीत करणीमुद्रा है ताहि कुंभकतें पूर्वही करने योग्य है कुंभकतें पश्चात् योग्य नहीं कुंभक अभ्यास कालके प्रथम दशकुंभक करना योग्य हैं फिर दिन दिन विषे पांच पांच वृद्धि करना योग्य हैं ॥ ४ ॥

सहितमभ्यसेत्तावत् यावत्कुंभं न केवलम् ॥ केवलानंतरं चैव कुर्य्याद्दश च विंशतिः ॥ ५ ॥ अभ्यासं सकलं कुर्य्यादीश्वरार्पणमादृतः ॥ मध्याह्ने च तथाभ्यासं कृत्वा भोजनमाचरेत् ॥ ६ ॥

रेचक पूरक करिके युक्त जो सहितकुंभक जबतक केवल कुंभक प्राप्त न होय तब तक सहितकुंभकका अभ्यास करै और जबतक केवलकुंभक सिद्धहोजाय तबतक दश वा वीस

सहित कुंभक करै ॥ ५ ॥ अभ्यास संपूर्ण ईश्वरकूं आदरपूर्वक अर्पण करै इसी प्रकार मध्याह्नकाल विषे अभ्यास करै और अभ्यासकूं करिकै फिरि भोजन करै ॥ ६ ॥

कुर्वीत भोजनं पथ्यमपथ्यं न कदाचन ॥ भोजनानंतरं किंचिच्छयनं सौख्यदायकम् ॥ ७ ॥ सायं संध्याविधिं कृत्वा योगं पूर्ववदाचरेत् ॥ अर्द्धरात्रे हठाभ्यासं श्रद्धाचेद्यदि धीमतः ॥ ८ ॥

भोजन पथ्यकरै अपथ्य कोई समय न करै सो पथ्यापथ्य विचार पूर्वही कहिचुकेहैं भोजन करिकै सौख्यदायक जो शयन है सो थोडासा करै ॥ ७ ॥ सायंकालविषे संध्यावंदन करिकै जैसे पूर्वकालविषे कहि आये तैसेही फिर अभ्यास करै और धीमान् जो साधकपुरुषकी श्रद्धा होय तौ अर्द्धरात्र समय हठ अभ्यास करै इस प्रकार योगाभ्यास क्रम है सो जानना ॥ ८ ॥

॥ अथ छायापुरुषस्य विधानम् ॥

शुद्धातपे स्वदेहस्य प्रतिबिंबं विलोकयेत् ॥ भूमौ दृष्ट्वा तथा खे च प्रतीकोपासनां चरेत् ॥ ९ ॥ योगी समभ्यसेन्नित्यं स्वप्रतीकं यथाविधि ॥ तेन विज्ञायते सर्वं लाभालाभौ भवाभवौ ॥१० ॥

शुद्ध आतप जो स्वच्छ घर्म वा स्वच्छ चांदनी हो तब अपनी देहका जो प्रतिबिंब अर्थात् छाया ताहि विलोकयेत् कहैं देखै गर्दनविषे इस प्रकार पृथिवीमें देखि आकाशमें देखै तौ जरूर छायापुरुष दर्शन होगा इसमें संशय नहीं ऐसी प्रतीकउपासना करै इसको प्रतीक उपासना कहते हैं ॥ ९ ॥ अपना जो स्वप्रतीक अर्थात् छायापुरुष दर्शन सो योगी नित्यही देखनेका अभ्यास करै तिस छायापुरुष दर्शनसे संपूर्ण लाभ हानि होनी अनहोनी संपूर्ण मालूम होजाती है ॥ १० ॥

शिरश्छिन्नं तथा कंपस्तदा मृत्युर्भवेद्धुवम् ॥ यदा न दृश्यते बाहुर्भ्रातृहानिस्तु जायते ॥ ११ ॥ समस्तानि च ह्यंगानि स्वप्रतीकेन पश्यति॥ तत्सर्वं च विजानीयात्तस्य हानिर्न संशयः ॥ १२ ॥

जो छायापुरुषका शिर न दिखाय तथा कांपता दीखे तो अवश्य मृत्यु होती है और जो दक्षिण भुजा न दिखाय तो बंधुकी हानि होय वाम भुजा न दिखाय तो स्त्रीकी हानि होय ॥ ११ ॥ समस्त जो संपूर्ण अंग छायापुरुपके हैं तिनमेंसे जो न दिखाय तो जानना चाहिये कि तिसी अंगकी हानि होगी इसमें संशय नहीं ॥ १२ ॥

यःकरोति सदाभ्यासं गुप्ताचारेण मानुषः ॥ ईशत्वं नात्र संदेहः षण्मासेन च लभ्यते ॥ १३ ॥ विवाहे गमने चैव काले चमरणे तथा॥अवश्यमेव कर्त्तव्यं योगिभिस्तदुपासनम् ॥ १४ ॥

जो साधक सदैवकाल छायापुरुष दर्शनका अभ्यास करता है वह छै महीनोंमें ईश्वर अर्थात् महादेवके सदृश समर्थ होजायगा ॥ १३ ॥ विवाहकाल तथा यात्राकाल तथा मरणकाल इन कालनमें योगीनकरिकै तौन उपासना अवश्य कर्तव्य है इससे सर्ववार्ता पूर्वपर जानी जाती हैं ॥ १४ ॥

सकलयोगरहस्यमितीरितं युगलदासजनेन समासतः ॥ पठति यश्चसमाचरतीह वै पतति जातु स नो हि भवार्णवे ॥ १५ ॥

संपूर्ण जो योग शास्त्रका रहस्य अर्थात् सार२सो समास पूर्वक सम्यक् प्रकारसे युगलदास जो हैं तिन करिकै वर्णन कऱ्यौ है ताहि जो मनुष्य पढैं वा आचरण करैंगा सो भवार्णव जो संसारसागर है तामैं पतित नहीं होगा इसमें संशय नहीं ॥ १५ ॥ इति प्राणायामक्रमः ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बंबई.